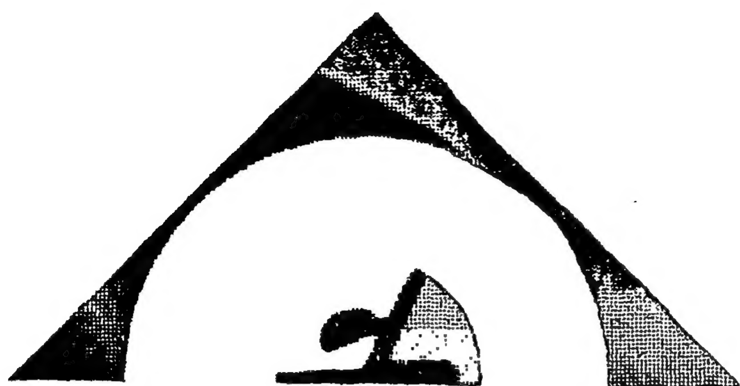
बूंद भी : लहर भी

आदर्श साहित्य संघ प्रकाशन



बूंद भी : लहर भी





आचार्य तुलसी

संपादिका : साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

स्वर्गीय संतोकचन्दजी सेठिया की पुण्य स्मृति में श्री सूरजमल मोहनलाल सोहनलाल सेठिया, सरदारशहर-अहमदाबाद-कलकत्ता के आर्थिक सौजन्य से प्रकाशित

पूज्य स्वर्गीय पिताजी कोडामलजी माताजी झमकु देवी बांठीया की स्मृति में आधे मूल्य में यह साहित्य वितरण किया।

राजमोहन मानिकचन्द बांठीया

☎ 34708-35606

कोडामल राजमल बांठीया सुजानगढ़. चुरु.

कोडामल बहादुरमल पांजरा शेरी. सगरामपुरा. सूरत.

मूल्य : दस रुपये /प्रथम संस्करण, १६८४ / प्रकाशक : कमलेश चतुर्वेदी, प्रबन्धक, आदर्श साहित्य संघ, चूरू (राजस्थान) /मुद्रक : भारती प्रिण्टर्स, दिल्ली-११००३२

प्राथमिकी

कहानी साहित्य की वह विधा है, जिसके साथ नानी-दादियों की यादें जुड़ी हुई हैं। संध्या के समय खाने-खेलने के वाद नन्हे-मुन्ने वच्चों की एक उपनिषद् उनकी नानी या दादी के पास हुआ करती थी। रोते-मचलते वच्चे कहानी सुनते-सुनते दिन भर की थकान उतारते, पढ़ाई के श्रम को दूर करते। नये संस्कार पाते और निश्चिन्त भाव से सो जाते। यह उस जमाने की वात है जव रेडियो नहीं थे, टेलीविजन नहीं थे, सिनेमा नहीं थे और वीडियो नहीं थे। उस समय जिन्दगी का बोझ हल्का करने के लिए घर-घर में मनोरंजक कहानियों के दौर चलते थे, जिनमें वच्चे ही नहीं, वड़े-बूढ़े भी सम्मिलित होते थे। वे कहानियां मन को तो रंजित करती ही थीं, साथ में ऐसी सीख भी दे जाती थीं, जिसका जीवन के निर्माण में वहुत वड़ा हिस्सा होता था। मन के मन्दिर में धूपदानी की तरह सुलगती हुई वे प्रेरक कहानियां मन और प्राणों को अपनी महक में डुवो जाती थीं। शाम ढलते ही घर [illegible] खिलती हुई रातरानी की सुगन्ध के साथ-साथ वच्चों में कहानी सुनने [illegible]दा होती थी, किन्तु आज शहरी वातावरण में न तो इतने खुले घर हैं, न वगीचे हैं, न रातरानी की सौरभ है और न नानी-दादी की वे मनभावन कहानियां ही हैं। यदि कहीं कहानी सुनाने वाली मिलती हैं तो वच्चों के पास समय नहीं होता। स्कूल, होमवर्क, भोजन, खेल और टी० वी०। इस व्यस्तता ने मनोरंजन की सात्विकता को छीना है और छीना है वीरता, भक्ति एवं वैराग्य के संस्कारों को।

कहानी चाहे ऐतिहासिक हो, पौराणिक हो, काल्पनिक हो या वर्तमान की सच्ची घटना, उसमें कुछ ऐसी मिठास होती है, जो सबके मन को लुभाती है। कहानी सुनने में जितनी सुखद होती है, समझने में उतनी ही सरल होती है। वहुत सोचने-समझने पर भी जो वात समझ में नहीं आती, कहानी उस सन्दर्भ में पलक झपकते ही नया वोध-पाठ दे जाती है। आज भी कहानियों का युग वीता नहीं है। वीत भी नहीं सकता। वह तो सदावहार फूल की तरह और नीलम-सी दमकती अल्हड़ पहाड़ी नदी की तरह महकती रहती है, बहती रहती है और लोक-संस्कृति

को उजागर करती हुई जन-जन में नयी प्रेरणा भरती रहती है।

आचार्यश्री तुलसी महान् कथाशिल्पी हैं। लेखन के लिए आपको अवकाश बहुत कम मिलता है। किन्तु आपके प्रवचनों में कथाओं की जो छटा लगती है, श्रोता भाव-विभोर हो जाते हैं। कहानी छोटी हो या बड़ी, व्यंग्य हो या चुटकला, उसके कहने और लिखने का ढंग जितना मार्मिक होता है, वह उतना ही हृदय-स्पर्शी बन जाता है। 'बूंद भी : लहर भी' आचार्यश्री तुलसी द्वारा कही गयी और लिखी गयी छोटी-बड़ी, ऐतिहासिक, पौराणिक और काल्पनिक—सभी प्रकार की कथाओं का एक सतरंगा संकलन है। इसमें प्रारम्भ की कुछ कथाएं बड़ी हैं और सोद्देश्य लिखी गयी हैं, इसलिए उनमें भाषा का प्रवाह कुछ दूसरा है। कुछ कहानियां प्रवचन में कही हुई हैं और कुछ आपके विशेष ग्रन्थों के परिशिष्टों से ली गयी हैं। कुल मिलाकर कहानियों का यह संकलन अपने बहुआयामी कथ्य और शिल्पन की दृष्टि से एक नया प्रयोग है।

इस संकलन में कुछ बूंदें हैं, जो अपने समग्र अस्तित्व को बहुत थोड़े में समेटे हुए हैं और कुछ लहरें हैं जो अपने विस्तार की ओर गतिशील हैं। बूंद हो या लहर, अपने अस्तित्व को कालजयी बनाने के लिए उन्हें सागर में खो जाने का संकल्प लेकर ही चलना पड़ता है। ये बूंदें और लहरें भी सत्य के सागर में मिलने की संपूर्ण तैयारी के साथ प्रस्तुत हैं। पाठक इस माध्यम से सत्य की राह में गतिशील बनेंगे और स्वयं सत्य का साक्षात्कार करेंगे, ऐसा विश्वास है।

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

बालोतरा
६ नवम्बर, १९८३

अनुक्रम

बूंद भी : लहर भी



प्रतिबोध

भावदेव अपनी नवोढ़ा वधू नागला के साथ घर में प्रविष्ट हो रहा है। वस्त्रों के गठवन्धन ने उसको वाहर से वांध रखा है और भीतर अनुराग की गांठें पड़ती जा रही हैं। नये जीवनसाथी के साथ जीने की स्वप्निल आकांक्षाएं आकार पा चुकी हैं और अव भावी जीवन की रंगीन कल्पनाएं आस-पास मंडरा रही हैं।

नागला नये संसार में प्रवेश कर चुकी है। उसकी लजीली आंखों में अज्ञात भविष्य के प्रति भय और उत्साह दोनों का सम्मिश्रण झलक रहा है। वैवाहिक रीति-रस्म पूरी करने के लिए वह अपनी ससुराल की स्त्रियों से घिरी बैठी है। भावदेव भी उसी घेरे में उपस्थित है।

सहसा घर में मुनि का आगमन हुआ। भावदेव के ज्येष्ठ भ्राता भवदेव पिछले कई वर्षों से मुनि-धर्म में दीक्षित थे। दीक्षित होने के वाद आज पहली वार जब उन्होंने अपने घर की दहलीज पर पांव रखे, परिजन पुलक उठे। उत्सव में नया उत्सव देखकर गृहस्वामिनी रेवती के आनन्द की सीमा नहीं रही।

मुनि भवदेव ने भावदेव को सम्वोधित कर संसार की नश्वरता का उपदेश दिया। भावदेव के मन पर कोई असर नहीं हुआ। पर वह अपने समादरणीय सहोदर के कथन का प्रतिवाद नहीं कर सका। वह विना इच्छा परिवार की अनुज्ञा लेकर मुनि-धर्म में दीक्षित हो गया।

मुनि-जीवन की कष्ट और आनन्दपूर्ण साधना के समय भी मुनि भावदेव अपनी पारिवारिक स्मृतियों में खोया रहता। नागला के प्रति उसका अनुराग अव भी कम नहीं हुआ। नमस्कार-महामन्त्र के जप की भांति वह नागला का नाम स्मरण करता। इस दोहरी भूमिका में उसने वारह वर्ष पूरे कर दिए।

वारह वर्ष वाद मुनि भवदेव दिवंगत हो गए। ज्येष्ठ वन्धु के संकोच की अर्गला टूटी और वह नागला के पास जाने के लिए आतुर हो गया। माता की उपस्थिति उसके अभिलपित कार्य की निष्पत्ति में एक वड़ी वाधा थी। इसलिए वह इस सम्वन्ध में पूरी जानकारी करने हेतु मुनि-वेश में ही अपने नगर पहुंचा। शहर से वाहर एक उपवन में पहुंचकर उसने विश्राम किया।

इधर नागला शादी के तत्काल बाद पति के प्रव्रजित हो जाने पर बहुत दुःखी हुई। दुःखोपशमन के लिए उसे साध्वियों के सम्पर्क में ले जाया गया। वहां उसे भौतिक परिवेश में अनासक्त रहकर आत्मरमण की प्रेरणा मिली। सास रेवती के कुशल नेतृत्व और साध्वियों के सम्पर्क ने उसके जीवन को दूसरा मोड़ दे दिया। अब वह श्रद्धा, ज्ञान और आचरण की त्रिवेणी में निमज्जित होकर आत्मलीन हो गई थी।

उस दिन वह अपनी सहेलियों के साथ उपवन के निकट से गुजरी तो तत्रस्थ मुनि भावदेव को देखकर भाव-विभोर हो गई। उसने मुनि को वन्दना कर भिक्षा के लिए निवेदन किया। मुनि ने पूछा—शहर में श्राविका रेवती रहती थी। उसकी क्या स्थिति है? इस प्रश्न ने नागला को थोड़ा संदिग्ध कर दिया। वह संयत भाषा में बोली—मुनिवर! दृढ़धर्मिणी श्राविका रेवती का देहावसान हो गया। यह सुनकर मुनि के मुख पर चमक आ गई। माता की बाधा निरस्त हो चुकी थी। वह फिर बोला—बहन, रेवती की पुत्रवधू नागला कहां है?

नागला भावदेव को पहचान चुकी थी। अपने सम्बन्ध में प्रश्न सुनकर उसने अपने सन्देह को निश्चय के रूप में बदल लिया। फिर भी मुनि के अन्तर्मन की थाह पाने के लिए वह बोली—मुनिवर! नागला कहां है और कहां नहीं, इससे आपको क्या प्रयोजन? आप मुनि हैं। मुनि-जीवन में अप्रासंगिक रूप से स्त्री कथा को वर्जित बताया गया है।

नागला के इस कथन ने मुनि को थोड़ा उत्तेजित कर दिया। वह भाषा-संयम के बांध को तोड़कर बोला—तुम कौन आयी हो मुझे उपदेश देने वाली? नागला मेरी पत्नी है। मैं उसी के लिए यहां आया हूं। मैंने उसकी जीवन-वाटिका को उजाड़ दिया। अब उसे सरसब्ज बनाना मेरा काम है।

नागला को यह विश्वास नहीं था कि मुनि यहां तक आगे बढ़ जाएंगे। वह उनके पतनोन्मुख व्यवहार से कांप उठी। एक क्षण वह किंकर्तव्यविमूढ़-सी खड़ी रही। दूसरे ही क्षण कृत्रिम उत्तेजना प्रकट करती हुई बोली—नागला मेरी सखी है। मैं उसे बाहर और भीतर दोनों ओर से पहचानती हूं। उसने उसकी सास का अनुसरण किया है। वह आजीवन ब्रह्मचारिणी बन चुकी है। उसके लिए आप अपनी नैया को मझधार में न ले जाएं।

नागला और भी कुछ कहना चाहती थी, पर उसका कथन मुनि को अप्रिय लग रहा था। मुनि ने उसको आगे बोलने से रोक दिया और अपनी योजना की क्रियान्विति के लिए शीघ्र ही कोई कदम उठाने का निर्णय ले लिया।

नागला वहां से उठी और घर चली गई। वहां से वह अपनी पड़ोसिन को साथ लेकर पुनः उपवन में पहुंची। दोनों बहनें सामायिक लेकर बैठ गईं। मुनि को यह अच्छा नहीं लगा, पर कर क्या सकता था। वह उपवन से बाहर निकलने की

बात सोच ही रहा था कि एक बालक दौड़ा-दौड़ा आया और अपनी मां की गोद में बैठ गया। माता ने पुत्र का सिर सहलाते हुए कहा—बेटा ! अभी तो मैं घर से आयी हूं, तू यहां क्यों आ गया? बालक बोला—मां ! आज तुमने मुझे खीर-पूरी का भोजन खिलाया था। खीर इतनी स्वादिष्ट थी कि मैंने दो कटोरी साफ कर दीं। —तो क्या हुआ, बेटा ! तेरे लिए ही तो बनाई थी खीर—मां के ऐसा कहने पर पुत्र बोला—मां ! न जाने क्या हुआ? खीर खाते ही वमन हो गई। अरे मुन्ना ! यह तुमने क्या किया? इतनी स्वादिष्ट खीर मिट्टी में मिला दी? नहीं, मां ! मैं इतना मूर्ख नहीं हूं कि उस बढ़िया खीर को व्यर्थ गंवा देता। मैंने वमन से निकली हुई खीर को पुनः खा लिया। क्यों मां ! मैंने अच्छा ही किया है न ?

माता अपने पुत्र की इस हरकत से खुश होकर बोली—शाबाश बेटे ! तुमने बहुत अच्छा किया। मुझे तुम पर नाज है। मुझे विश्वास हो गया है कि तुम अपने घर की संभाल अच्छी प्रकार कर सकोगे।

इधर माता-पुत्र का संवाद हो रहा है, उधर मुनि भावदेव इस प्रसंग को सुनकर एक बार स्वयं को भूल गए और उस बहन को सम्बोधित कर बोले—बहन ! तुम सामायिक में हो, धर्मस्थान में बैठी हो, क्या तुम्हें पता है तुम क्या कर रही हो और क्या कह रही हो? ऐसी सामायिक न भी करती तो क्या जाता था? वान्त खीर को खाने पर तुम पुत्र की प्रशंसा कर रही हो, इससे अधिक क्या फूहड़पन होगा ?

मुनि की यह बात सुन नागला बोली—मुनिवर ! आप बुरा क्यों मानते हैं? आजकल का समय ही ऐसा है। इस युग में वमन खाने से ही मन खुश होता है। यह तो बच्चा है। आप जैसे साधक मुनि भी वान्त भोगों के लिए लालायित हो रहे हैं। क्या यह मुनिजनोचित कार्य है ?

नागला के इन मर्मवेधी शब्दतीरों ने मुनि भावदेव को भीतर तक वेध दिया। अब वह अपने स्थान पर पाषाणी प्रतिमा की तरह निश्चल खड़ा था। उसकी पलकें झुक गईं और मन में एक तीव्र हलचल मच गई। उसे अपने अस्थिर विचारों पर गहरा अनुताप होने लगा।

नागला ने देखा तीर निशाने पर लगा है। मुनि भावदेव की विचार-श्रेणी में ऊर्ध्वारोहण हो रहा है और ये सही मार्ग पर आ गए हैं। अब नागला ने अपने आपको व्यक्त कर दिया।

मुनि भावदेव को जब इस बात का पता चला कि उसे प्रतिबोध देने के लिए ही यह सारा प्रपंच रचा गया और ऐसा करने वाली स्वयं नागला है तो वह उसके प्रति श्रद्धा से नत हो गया। साधना में स्थिर होने के बाद भी उसकी सांस-सांस में 'नागला' समाई हुई है। किन्तु उस नागला और इस नागला में वह बहुत बड़ा अन्तर अनुभव कर रहा है।

संकल्प की धुरी पर

आषाढ़ कृष्णा त्रयोदशी की नीरव रात्रि। आकाश में तारे झिलमिला रहे थे। चन्द्रमा का उदय अभी तक नहीं हुआ था। कहीं-कहीं वादलों की छोटी-छोटी टुकड़ियां तारकमण्डल को आच्छादित कर रही थीं। नव-दम्पति विजय और विजया अपने वैवाहिक जीवन की प्रथम रात्रि में अत्यन्त उल्लास मना रहे थे। पिछले कुछ दिनों का औपचारिक परिचय यथार्थ के धरातल पर उतर रहा था।

श्रेष्ठी-पुत्र विजय अपने जीवन में विजया के आगमन से वहुत मुदित हुआ। संगमरमरी देह में सिमटे हुए सौन्दर्य की साम्राज्ञी विजया मन से जितनी निश्छल थी, उतनी ही निश्छलता उसके व्यवहारों में झलक रही थी। प्रथम मिलन के मधुर क्षणों में विजय उसे अनिमिष निहार रहा था। और वह कनखियों से झांक-कर अपने जीवनसाथी के निकट पहुंच रही थी।

अव विजय और विजया सहयात्री वन चुके थे। एक-दूसरे के सुख-दुःख में साथ देने का संकल्प वे पाणिग्रहण के समय ही कर चुके थे। आत्मीयता के उस अपूर्व अवसर पर विजया के अयाचित समर्पण ने विजय को विमुग्ध कर दिया। विमुग्ध होने पर भी विवेक की शृङ्खला ने उसको विचलित नहीं होने दिया। उस समय विजया की प्रश्नायित आंखें विजय के अन्तःकरण को आरपार वेध गईं। वह अत्यन्त मधुरता से बोला—विजये! तुम मुझे तीन दिन का अवकाश दो। विजया का भोला मानस इस पहेली को नहीं समझ पाया। उसने इस तथ्य को स्पष्टता से समझना चाहा। अपनी सहधर्मिणी की जिज्ञासा को समाधान देने के लिए विजय अपनी रामकहानी सुनाता है—

विजये! कुछ समय पूर्व मैंने सन्तों का प्रवचन सुना था। उनके व्यक्तित्व और वाग्मिता ने मुझे प्रभावित किया। उनके मुखारविन्द से ब्रह्मचर्य की महिमा सुनकर मैंने जीवनभर कृष्णपक्ष में ब्रह्मचर्य की साधना का संकल्प स्वीकार कर लिया।

यह वात सुनते ही विजया के विस्मय-विस्फारित नेत्रों में एक अज्ञात पीड़ा उभर आयी। एक गहरा निःश्वास छोड़ते हुए उसने कहा—अव क्या होगा? विजय

उसकी मनःस्थिति का अनुमान लगाए, तब तक उसमें बड़ा परिवर्तन आ गया। उसकी आंखों में विस्मय और पीड़ा के स्थान पर स्मित रेखाएं समा गईं।

विजय इस स्थिति में स्तब्ध हो गया। वह कुछ समझ नहीं सका। उसने विजया का हाथ अपने हाथ में लेकर आग्रहपूर्वक इस घटनाचक्र के बारे में जानना चाहा। विजया ने अपना हृदय खोलते हुए कहा—मेरा सौभाग्य है कि मुझे ऐसे धर्मनिष्ठ पति मिले हैं। ब्रह्मचर्य की साधना आपको प्रिय है तो मुझे भी कम प्रिय नहीं है। सन्तों के सदुपदेश से मैंने भी ब्रह्मचर्य का महत्त्व समझा है और शुक्लपक्ष में आजीवन साधना करने का व्रत लिया है। आपके और मेरे संकल्प की समन्विति में मैं अपने समग्र जीवन को ब्रह्मचर्य के आलोक से आलोकित कर सकूंगी।

विजया का संकल्प सुनकर विजय के मन पर एक तीव्र आघात हुआ। वह अनमना-सा होकर बोला—हाय विजये! यह तुमने क्या कर लिया? कितने रंगीन सपने संजोए थे मैंने तुम्हारी अभीप्सा में। किन-किन कल्पनाओं में खोकर मैंने तुम्हारा अस्तित्व स्वीकार किया था। पर फूल खिलने से पहले ही मुरझा रहा है, नक्षत्र उदित होने से पहले ही अस्त हो रहा है और दीप जलने से पहले ही बुझ रहा है। प्रिये! तुम्हें संकल्प करना ही था तो कम से कम मुझे पूछ तो लेती। हम दोनों एक ही संकल्प को स्वीकार कर एक पथ के पथिक बन जाते। हमारे संकल्प की विषमता हमारे जीवन में विषमता के बीज तो नहीं बो देगी?

विजया ने विजय की मर्मान्तिक व्यथा को ध्यान से सुना। उसके अन्तःकरण में करुणा का सागर लहराने लगा। वह अपने पति के प्रति समर्पित थी। किन्तु व्रत के प्रति किया गया उसका समर्पण भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं था। वह इस समर्पण को निभाती हुई विजय की वेदना धोना चाहती थी। विजय को व्यथित रखकर वह भी सुखी नहीं रह सकती थी। उसने एक विकल्प सोचा और उसका प्रस्तुतीकरण करते हुए कहा—मेरे देवता! मैं अपने मन-मन्दिर में आपको प्रतिष्ठित कर चुकी हूं। मैं एक मौन पुजारिन की भांति आपकी पूजा करती रहूंगी। मैं मानती हूं कि मैं आपकी अपराधिनी हूं। पर मैं आपकी प्यास को अबूझ नहीं रहने दूंगी। आपसे मेरा सविनय, साग्रह अनुरोध है कि आप किसी कन्या का वरण कर मेरी भूल का संशोधन करें। मैं आपके अन्तःसौन्दर्य में डूबकर अपनी जीवन-यात्रा को पूरी कर लूंगी।

विजय विजया के इस विनम्र समर्पण से अभिभूत हो गया। उसे अपने कथन पर अनुताप होने लगा। विजया के प्रति अतिशय प्रियता प्रदर्शित करता हुआ वह बोला—विजये! तुमने मुझको समझा नहीं है। तुम्हें मेरी शपथ है जो ऐसी बात फिर मुंह से निकाली। मेरे पुरुषार्थ का तकाजा है कि मैं तुम्हारी शौर्य-वृत्ति का अनुसरण करूं। तुम नर और नारी में जिस भेद-रेखा की कल्पना कर रही हो, वह मेरे लिए असह्य है। मैं इस तथ्य को कभी स्वीकार नहीं कर सकता

अपनी वासना-पूर्ति के लिए मनमानी करता रहे और सुकुमार स्त्री घुट-घुटकर अपना जीवन पूरा करे। तुम्हारे आत्मोदय ने मेरी भी आंखें खोल दी हैं। आज मैं तुम्हारी साक्षी से संकल्प करता हूं जीवन भर ब्रह्म-सरोवर में क्रीड़ा करने का। अव मुझे वासना छल नहीं सकेगी। हम एक-दूसरे की उपासना कर वासना के हर वार को विफल कर देंगे।

विजया विजय के इस उदात्त परामर्श से प्रफुल्ल हो गई। उसे विश्वास ही नहीं था कि विजय इस प्रकार उसका साथ देगा। अव उन दोनों को एक नये पथ पर चलने का निर्णय लेना था। वे नहीं चाहते थे कि उनकी इस विलक्षण यात्रा के सम्वन्ध में किसी को कुछ जानकारी मिले। इसलिए उन्होंने एक नया संकल्प स्वीकार किया कि जव तक हमारी साधना प्रच्छन्न रहती है, हम साथ रहेंगे, पति-पत्नी की भांति रहेंगे। किन्तु जिस दिन इस वृत्त की अवगति किसी को मिल गई, हम मुनि-धर्म में दीक्षित हो जाएंगे।

भरा-पूरा यौवन, सुन्दर स्वास्थ्य, परिवेश में सौन्दर्य का उभार, अपार धन-सम्पदा और पारस्परिक स्नेह का सघन अनुवन्ध। फिर भी उनकी पवित्रता में निखार आ रहा था। वे दोनों साथ-साथ रहते थे, एक कक्ष में विश्राम करते थे, एक शयन पर सोते थे, एक-दूसरे के विछोह में अनमने हो जाते थे, फिर भी थे मानसिक द्वन्द्व से सर्वथा मुक्त।

मक्खन को आग पर रख दें और वह पिघले नहीं, यह असंभव कल्पना है। पानी को ढलान की ओर वहा दें और वह वहे नहीं, यह भी संभव नहीं है। किन्तु विजय-विजया ने इस असंभव सत्य को संभव कर दिखा दिया। वे आग से खेलते रहे, दुधारी तलवार पर चलते रहे, मोम के दांतों से लोहे के चने चवाते रहे और भुजाओं से असीम पारावार को तरते रहे।

वर्षा और शरद ऋतु ने विजय और विजया के मन में उन्माद भरने का प्रयास किया, मधुमास में वौरायी हुई मंजरियों और कोयल की मधुर कूज ने उनको वासना की भूमि पर विहार करने के लिए आमन्त्रित किया, पर उनकी अजेय चेतना पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वे एक-दूसरे से जितने निकट थे, उतने ही दूर थे। आगम की भाषा में—'नेव से अन्ते नेव से दूरे'— वे न दूर थे और न निकट। एक-दूसरे के प्रति समर्पित होने पर भी वे अपने अस्तित्व के प्रति पूर्ण जागरूक थे। उनकी इस जागरूक यात्रा ने उनको जीवन की नयी कला दी, नया वोध दिया और दिया नया उल्लास। उनकी यह यात्रा तव तक चलती रही, जव तक इसका रहस्योद्घाटन नहीं हो गया।

अनुराग पर विराग की जीत

कुलभूषण और देशभूषण नाम के दो राजकुमार थे। वे दोनों भाई थे। उन्हें बचपन में ही अध्ययन करने के लिए गुरुकुल भेज दिया गया। उसके बाद राजपरिवार के साथ उनका कोई सम्बन्ध नहीं रहा। गुरुकुल में वे ऋषि जैसा जीवन जीते, ऋषिकुमारों के साथ रहते और परिवार, समाज तथा राज्य की सब चर्चाओं से मुक्त रहकर विद्या प्राप्त करते। इस प्रकार उन्होंने बारह वर्ष बिता दिए। उस अवधि में वे साहित्य, काव्य, गणित, शिल्प, धनुर्विद्या, प्रशासन-विद्या आदि अनेक विद्याओं में निष्णात हो गए।

गुरुकुल का अध्ययन पूरा कर दोनों राजकुमारों ने अपने सहपाठियों से विदा ली। कुलपति के साथ वे दोनों अपने शहर पहुंचे। एक भव्य जुलूस के साथ उनका शहर-प्रवेश हुआ। राजकुमारों की शोभा-यात्रा देखने के लिए छज्जों, छतों और झरोखों से राजपथ पर झांकती हुई हजारों-हजारों आंखें कृतार्थ हो रही थीं। रथ पर आरूढ़ राजकुमार जनता का अभिवादन करते हुए राजभवन के निकट पहुंचे। वहां उन्होंने गवाक्ष में खड़ी एक किशोरी को देखा। किशोरी का व्यक्तित्व आकर्षक था। बारह वर्ष की अवस्था में भी वह एक षोडशी से कम नहीं लगती थी। राजकुमार प्रथम दर्शन में ही उसके प्रति आकृष्ट हो गए। उनका मानसिक अनुराग जाग गया। वे बार-बार झरोखे की ओर दृष्टिक्षेप करने लगे। उनका मन अनायास ही उस किशोरी के बारे में सोचने लगा। वे अब उसका परिचय पाने के लिए आतुर हो उठे।

रथ राजभवन के उस भाग को पीछे छोड़कर राजसभा के मुख्यद्वार तक पहुंच गया। राजकुमारों का मन पीछे छूट रहा था, बड़ी कठिनाई से उसे नियंत्रित कर वे राजसभा में पहुंचे। अतिशय विनम्रता के साथ वे पिता के चरणों में झुके। राजा ने अपने पुत्रों को गले लगाकर कुशल-संवाद पूछा। कुलपति ने दोनों राजकुमारों का प्रगति-विवरण राजा को सुनाया। राजा अपने पुत्रों की योग्यता के सम्बन्ध में सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने कुलपति के प्रति आभार ज्ञापन कर, उन्हें अनेक प्रकार के उपहार देकर ससम्मान विदा कर दिया।

मंत्री-परिषद और सभासदों से मिलकर दोनों राजकुमार अन्तःपुर में पहुंचे। वहां उनकी माता पुत्र-मिलन के लिए विह्वल हो रही थी। राजकुमार दौड़ते हुए मां से मिले, पर माता के पास खड़ी उसी किशोरी को देखकर वे सहम गए। माता बालक से युवा बने पुत्रों से उनकी बारह वर्षीय शिक्षा-यात्रा के संस्मरण सुनने के लिए उतावली हो रही थी। राजकुमार एक बात कहते और उनका मन उसी किशोरी में उलझ जाता। उन दोनों के भीतर स्नेह-राग की तरंगें धैर्य का तट तोड़ने के लिए मचल रही थीं। आखिर एक राजकुमार ने विषय को मोड़ देते हुए पूछा—माताजी, यह लड़की कौन है ?

राजकुमार का यह प्रश्न सुनकर जहां किशोरी की आंखों में नयी चमक आ गई, वहां राजमाता उत्साहित होकर बोली—पुत्रों ! मैं तो भूल ही गई इसका परिचय देना, यह है तुम्हारी अपनी बहन राजकुमारी सुलोचना। तुम इसे नहीं पहचानते और यह भी तुम्हें नहीं जानती। इसका कारण यह है कि यह तुम्हारे गुरुकुल जाने के कुछ महीनों बाद जनमी थी। इन बारह वर्षों में न तुम कभी घर आए और न यहां से पत्र-व्यवहार ही किया। इसलिए तुम्हें इसके जन्म की सूचना नहीं मिल सकी। (राजकुमारी की ओर अभिमुख होकर) सुलोचना ! खड़ी-खड़ी देखती क्या हो ? चरण छुओ अपने बड़े भैया के और आशीर्वाद प्राप्त करो।

राजमाता की बात सुनकर दोनों राजकुमार हतप्रभ हो गए। राजकुमारी सकुचाती हुई राजकुमारों के निकट पहुंची। दोनों भाइयों के चरणों में झुककर उसने अपना अबोल प्रणाम उनकी आत्मा तक पहुंचाया। राजकुमारों ने अपने स्नेहिल हाथ बहन के मस्तक पर धरे। उन हाथों में एक प्रकंपन था, जो उनके मानसिक प्रकंपन को अभिव्यक्ति दे रहा था। उस समय उनकी आकृतियों पर खुशी के स्थान पर अनुताप की छाया थी, जो उनकी मां से छिपी नहीं रही। राजमाता विस्मित थी राजकुमारों की इस असामान्य मनःस्थिति पर, किन्तु वह कुछ पूछ न सकी।

राजकुमारों को जिस क्षण ज्ञात हुआ कि वह किशोरी, जिसमें उनका मन उलझ गया था, उनकी अपनी ही सहोदरी है, उनका मन ग्लानि से भर गया। वे सोचने लगे—उनके मन में, उनकी आंखों में अपनी बहन के प्रति वासना के भाव क्यों जगे ? उन्होंने बारह वर्ष तक गुरुकुल में अध्ययन किया, पर आज वह सारा श्रम व्यर्थ हो गया। उन्होंने सब कुछ पढ़ा, पर अध्यात्म विद्या को नहीं पढ़ा। यदि वे अध्यात्म को पढ़ लेते तो उनके मन में ऐसा पाप नहीं आता। अब वे क्या करेंगे ? कैसे अपने पाप का प्रायश्चित करेंगे ? इस विचार-प्रवाह में बहते हुए दोनों राजकुमार उस बिन्दु पर पहुंच गए, जहां वे कोई निर्णय ले सकते थे। उनका निर्णय उनकी अध्यात्म-चेतना के जागरण का प्रतीक था, ऋजुता का प्रतीक था, पाप-भीरुता का प्रतीक था और प्रतीक था अदम्य साहस का। उनका वह निर्णय था

जीवन भर ब्रह्मचर्य की साधना।

इस निर्णय के बाद राजकुमारों का मन हल्का था। उनके चेहरे पर सात्विक आभा थी और वे सहज हो गए। उनके माता-पिता को जब उनके अप्रत्याशित निर्णय की सूचना मिली तो वे स्तब्ध रह गए। कितने सपने संजोए थे उन्होंने राजकुमारों के भविष्य को लेकर! पुत्रों के घर-आगमन का उत्सव, विवाहोत्सव, राज्याभिषेक, और भी न जाने कितने उत्सव, कितने प्रसंग—किन्तु राजकुमारों ने सारी आशाओं पर पानी फेर दिया। राजा और रानी ने उनको बहुत समझाया, पर वे अपने निर्णय पर अडिग थे। राजा ने पुत्रों को सम्बोधित कर कहा—राजकुमारो! तुमने जो पथ चुना है, वह पलायन का पथ है। तुम अपनी इच्छाओं का दमन मत करो, राज्य का सुख भोगो और भोग के बाद होने वाली सहज विरक्ति से साधना का पथ स्वीकार करो। राजकुमार स्मिति बिखेरते हुए बोले—पिताजी! अब हमारे ज्ञानचक्षु उद्घाटित हो गए हैं। हमारा जो निर्णय है, वह दमन नहीं है। दमन बलात् होता है। हमारी वृत्तियां स्वाभाविक रूप से रूपान्तरित हुई हैं। दमन से वृत्तियां कुंठित होती हैं। हमारी सारी कुंठाएं टूट चुकी हैं। हम किसी प्रलोभन या भय से इस पथ पर नहीं बढ़ रहे हैं, हमारे अन्तःकरण की प्रेरणा ने हमको जागृत किया है। आप हमें अनुमति देकर अनुगृहीत करें। अब हमारे लिए एक क्षण का विलम्ब भी सह्य नहीं है।

बारह वर्ष विद्या-साधना के बाद दोनों राजकुमार आजीवन अध्यात्म-साधना के लिए कटिबद्ध हो गए। उन्होंने अपने जीवन में व्यक्तित्व-रूपान्तरण के बीजों का अंकुरण अनुभव किया। अनुराग पर विराग की विजय हुई। दोनों भाई राज्य के संपूर्ण वैभव और परिवार को छोड़ गुरु के पास पहुंचे। वहां उनकी साधना का क्रम प्रारम्भ हुआ। ध्यान और तपस्या के द्वारा उन्होंने अपने धर्म-संस्कारों को क्षीण कर साधना को सिद्धि के कगार तक पहुंचा दिया। वहां उनकी आत्मा केवल ज्ञान के आलोक से जगमगा उठी। उस आलोक में हजारों-हजारों लोगों ने भी अपने गन्तव्य का पथ पा लिया।

मोह-चिकित्सा : एक प्रयोग

राजा और मंत्री में इतना आत्मीय सम्बन्ध था कि उनमें स्वामी-सेवक भाव गौण था और मित्र भाव प्रमुख। राजसभा में मंत्री राजकीय मंत्रणा करता था।'शेप समय में राजा उसके साथ छोटे भाई-सा व्यवहार करता था। वे दोनों साथ-साथ रहते। उनमें इतना अद्वैत था कि वे एक-दूसरे के सुख-दुःख में बरावर साथ निभाते।

एक समय की वात है राजा और मंत्री किसी यात्रा पर निकले। मार्ग में वे एक पर्वतीय क्षेत्र से गुजरे। वहां उन्होंने एक देहाती भाई का आतिथ्य स्वीकार किया। उसके एक कन्या थी। उम्र थी उसकी सोलह वर्ष। उसमें रूप था। लावण्य था। रूप और लावण्य की प्रतिस्पर्द्धा में उसकी गुण-सम्पदा कहीं आगे बढ़ी हुई थी। राजा और मंत्री दोनों ही कन्या की विनम्रता और शालीनता पर मुग्ध हो गए। कन्या के पिता ने अपनी लड़की का हाथ राजा के हाथ में थमा दिया। मंत्री मन-ही-मन उस कन्या को अपना चुका था। उसे पहले ज्ञात हो जाता कि राजा का मन कन्या ने मोह लिया है तो वह अपना मन मोड़ लेता। पर उसे ज्ञात हुआ तव तक समय काफी हो चुका था। अव वह चाहने पर भी अपने मन को उस कन्या के अनुवंध से मुक्त नहीं कर सका।

यात्रा सम्पन्न कर राजा और मंत्री स्वदेश लौट आए। वह कन्या महारानी वनकर राजा के अन्तःपुर में सम्मिलित हो गई। राजा के मन में उसका विशेप स्थान था। वह भी राजा के प्रति हृदय से समर्पित थी। मंत्री की अतृप्त आकांक्षा वढ़ती जा रही थी। आकांक्षा-पूर्ति का कोई आसार नहीं था। मंत्री पर इस वात का इतना असर हुआ कि वह शरीर में कृश होने लगा। उसे दिन-रात कन्या की स्मृतियां सताती रहतीं। उसका खानपान कम हो गया, नींद कम हो गई, स्मृति कम हो गई, काम करने की क्षमता भी कम हो गई। पन्द्रह-वीस दिन में मंत्री की शरीर-स्थिति और मनःस्थिति में यह अप्रत्याशित परिवर्तन देखकर राजा ने पूछा—मित्रवर! क्या वात है? दुवले क्यों हो गए हो? मन भी भारी-भारी लगता है। ऐसी कौन-सी स्थिति है, जिसने तुम्हें इतना चिन्तित कर रखा है?

मंत्री ने हंसकर बात टाल दी। वह कहे भी तो क्या कहे ?

समय अपनी गति से चल रहा था। मंत्री का स्वास्थ्य दिन-दिन गिरता जा रहा था। राजा ने बीच-बीच में कई बार टोका, पर मंत्री था कि अपने मन का द्वार खोलता ही न था। राजा ने अनुभव किया—मंत्री मुझ से कुछ छिपा रहा है। अब मुझे कोई कठोर कदम उठाना चाहिए, अन्यथा मैं ऐसा सहृदय साथी खो दूंगा। इस चिन्तन के बाद वह एक दिन मंत्री को लेकर अपने विशेष मंत्रणा-कक्ष में बैठा। राजा ने उसके स्वास्थ्य के सम्बन्ध में कई प्रश्न पूछे। उसने कहा—मैंने डाक्टर से निदान करा लिया है, मुझे कोई बीमारी नहीं है। बीमारी के बिना वजन कम होने की बात में संगति नहीं बैठ रही थी। इसलिए राजा ने अत्यन्त आग्रह कर उसके मन का राज खुलवाना चाहा, पर मंत्री मौन रहा। मंत्री के मौन ने राजा को संदिग्ध बना दिया। उसने अपने प्राणों की शपथ दिलाकर उसे वस्तु-स्थिति स्पष्ट करने के लिए विवश कर दिया। मंत्री सकुचाता हुआ बोला—आप ऐसे शब्द मत बोलें। मैं आपसे कुछ भी छिपाकर रख ही नहीं सकता। पर करूं क्या ? स्थिति ही ऐसी है कि कुछ कह नहीं सकता। राजा ने रोष प्रदर्शित करते हुए कहा—ऐसी बात है तो फिर हमारी मैत्री का अर्थ ही क्या है ? इसका मतलब यह हुआ कि तुम मुझे अपने से भिन्न मानते हो, पराया समझते हो, अन्यथा यह दुराव क्यों ?

मंत्री गहरी दुविधा में फंस गया। वह अपने मन की बात कहने की अपेक्षा मरने को अच्छा समझने लगा। पर राजा ने उसे इतना बाध्य कर दिया कि विवश होकर सारी बात बतानी पड़ी। राजा ने मित्र की बात सुनी और उसे उलाहना देता हुआ बोला—तुम भी कितने मूर्ख हो ! इतनी छोटी-सी बात के लिए इतने व्यथित हो रहे हो। क्या जरूरत थी तुम्हें स्वास्थ्य खराब करने की ? जाओ, प्रसन्नता से जाओ। आज रात्रि में ही वह तुम्हारे पास पहुंच जाएगी।

राजा की यह बात सुन मंत्री के मन का एक कोना उल्लास से भर गया। उसका चिरपालित स्वप्न पूरा होने जा रहा था। ऐसा स्वप्न, जिसके पूरा होने की उसे किंचित् भी आशा नहीं थी। उसके पांव धरती पर नहीं टिक रहे थे। किन्तु इसके साथ ही मन के दूसरे कोने में उठ रहे प्रश्नचिह्न से वह उद्वेलित हो रहा था। यह सब कैसे होगा ? क्या राजा अपनी प्रियतमा को मेरे पास भेज देगा ? क्या वह रूपसी मेरे शयनकक्ष को पावन कर देगी ? मैंने राजा को अपने मन की बात बताई ही क्यों ? उसे ऐसे धर्म-संकट में फंसाया ही क्यों ? इसी उधेड़बुन में मंत्री अपने घर पहुंचा और उस क्षण की प्रतीक्षा करने लगा।

राजा मंत्री से वादा कर राजमहल में पहुंचा। वह सोचने लगा—मैंने मंत्री से कह तो दिया, पर वह नहीं मानेगी तो ? इस समस्या के समाधान-हेतु उसने नीति का सहारा लिया। रानी को अपने पास बिठाकर उसने प्रश्न किया—प्रिये !

तुम मेरे अनुशासन में हो ?

रानी—इसमें भी आपको सन्देह है ?

राजा—तुम मेरी किसी भी आज्ञा का पालन करने के लिए तैयार हो ?

रानी—आज आपके मन में यह प्रश्न कैसे उठा ?

राजा—मैं तुम्हारा परीक्षण करना चाहता हूं।

रानी—आपके आदेश पर मैं कठिन से कठिन काम कर सकती हूं।

राजा—देखो, फिर कोई वहाना काम नहीं आएगा।

रानी—आपके निर्देश पर मैं अपने प्राण निछावर करने के लिए तैयार हूं।

राजा—प्रिये ! आज की रात तुम्हें मेरे मित्र मंत्री के घर वितानी होगी।

रानी—क्यों ?

राजा—मैं वचनवद्ध हूं, तुम्हें वहां जाना होगा।

रानी—यह भी कोई वचन होता है ?

राजा—रानी ! तुम्हें मेरे आदेश का पालन करना है।

रानी—यह कैसा आदेश ? आपने मेरे साथ खिलवाड़ की है।

राजा—तुम मुझे मित्र के प्राणों की भिक्षा दो, अपना वचन पूरा करने का अवसर दो और मेरी आज्ञा स्वीकार कर उसकी क्रियान्विति करो।

राजा के इस आदेश से रानी गहरे सोच में डूब गई। इधर पति की आज्ञा, उधर सतीत्व का प्रश्न। आखिर रानी ने सोचा—राजा के आदेश का पालन न करूं, यह मेरे लिए जीते-जी मौत है। इससे अच्छा यही है कि मैं वहां जाऊं और किसी भी आवांछित स्थिति के घटित होने की संभावना में अपनी जीवन-यात्रा पूरी कर दूं। इस निर्णय के साथ ही रानी वहां जाने की तैयारी में जुट गई।

मंत्री अपने शयनकक्ष में अकेला वैठा था। उसकी दृष्टि रह-रहकर सीढ़ियों की ओर घूम रही थी। पर वहां किसी को न पाकर फिर आत्म-केन्द्रित हो जाता सामने दीवार पर टंगी घड़ी ने दस वजा दिए। मंत्री का विश्वास हिल उठा। वह मन ही मन कहने लगा—राजा ने मुझे फुसला दिया। वह रानी को यहां भेजेगा नहीं। राजा कहेगा तो भी रानी आएगी नहीं। कितना मूर्ख वना दिया आज राजा ने मुझको···मंत्री की चिन्तन-धारा वढ़ रही थी कि उसने सीढ़ियों पर किसी की पदचाप सुनी उसका कलेजा धड़कने लगा। वह मुश्किल से उठा और द्वार तक पहुंचा। सामने से आती हुई महारानी पर उसकी दृष्टि टिकी और शरीर का रोम-रोम कांप उठा। वाहरी अकम्पन ने उसको भीतर से ठेट तक कंपा दिया। महारानी के सौम्य सात्विक चेहरे को देखते ही मंत्री का मन वदल गया। उसकी अतृप्ति तृप्ति में परिणत हो गई और अपनी वृत्ति के लिए उसके मन में घृणा उभर आई।

परिवर्तित मनःस्थिति में मंत्री ने अपने आपको संभाल लिया। वह प्रसन्नता

व्यक्त करता हुआ बोला—पधारिए, माताजी ! बड़ी कृपा की आपने, मेरी झोंपड़ी को पावन कर दिया । जीवन भर नहीं भूल सकूंगा आपका यह अनुग्रह । आज मैं कृतार्थ हो गया । मंत्री के मुंह से ये शब्द सुन महारानी आश्वस्त हो गई । वह अब दोनों ओर से सुरक्षित थी । कुछ क्षण वहां रुककर महारानी लौट गई ।

महारानी के वहां से प्रस्थान करते ही मंत्री को अपनी स्थिति का भान हुआ । वह सोचने लगा—राजा ने उदारता में हद कर दी और मैंने नीचता में । उसने मुझे अपना मंत्री बनाया, मित्र बनाया, छोटे भाई-सा प्यार दिया और मैंने क्या किया ? जिस डाल पर बैठा उसी को काटने का प्रयास ! अब कौन-सा मुंह लेकर राजा के सामने जाऊंगा ? आत्मग्लानि में उसने हाथ में कटारी ली और उसे अपने पेट में घुसेड़ने के लिए उद्यत हुआ ही था कि पीछे से किसी ने उसका हाथ पकड़ लिया । मंत्री ने मुड़कर देखा, वह और कोई नहीं राजा ही था । मंत्री की निगाहें नीची हो गईं । वह रुआंसा होकर बोला—राजन् ! मेरे जैसा पापी इस संसार में कौन होगा ! अब मेरा जीना व्यर्थ है । मुझे मरने दो ।

राजा ने मंत्री के मुंह पर हाथ रखकर कहा—मित्र ! ऐसी बात फिर मुंह से मत निकालना । तुम इतने आतंकित क्यों हो रहे हो ? सोचो तो सही, तुमने किया ही क्या है ? मेरे मन में तुम्हारे प्रति गहरा विश्वास था, इसीलिए मैंने यह कदम उठाया । अन्यथा मैं ऐसा बचपना क्यों करता ? तुम अतीत को विस्मृत कर दो और नयी यात्रा शुरू करो ।

मंत्री राजा की इस आत्मीयता से द्रवित हो उठा । वह मुंह से कुछ नहीं बोला, पर उसकी भावपूर्ण आंखें कह रही थीं—धन्य हो, राजन् ! संसार में ऐसे व्यक्ति मिलने कठिन हैं । आपने मुझे प्राणदान दिया है । आपने केवल मेरे शरीर को ही नहीं बचाया है, आत्मा को बचा लिया है । अब मेरी वासना का वेग समाप्त है । मैं स्वस्थ हूं । मेरा जो भी उपयोग हो सकता हो, करो । अब मुझे अपने लिए नहीं, आपके लिए जीना है, मानव जाति के लिए जीना है ।

अपत्थं अंबगं भोच्चा

एक समृद्ध प्रदेश का राजा आम खाने का बहुत शौकीन था। जब तक वह आम नहीं खा लेता, उसे दिन भर का भोजन फीका-फीका लगता था। कभी-कभी तो वह प्रात:कालीन और मध्याह्नकालीन नाश्ते के अतिरिक्त दोनों समय के भोजन में भी आम ही लिया करता था। राजा के अधीनस्थ बहुत लोग राजा की इस रुचि से परिचित थे। वे यदा-कदा विभिन्न प्रकार के आमों से टोकरे भरकर ले आते और राजा को उपहृत कर देते। आमों का उपहार पाकर राजा बहुत खुश होता। उसकी खुशी उस समय बहुगुणित हो जाती, जब आम फलने की ऋतु समाप्त होने पर भी उसे उपहार में आम के टोकरे प्राप्त होते। कई वर्षों तक निरन्तर आम के सेवन करने से राजा बीमार हो गया। उसका स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट शरीर क्षीण होने लगा। वैद्य और डॉक्टरों ने चिकित्सा की, पर कोई लाभ नहीं हुआ। ज्यों-ज्यों दवा की, बीमारी बढ़ती गई। चिकित्सक हताश हो गए। वे रोग का समुचित निदान नहीं कर पाए।

राजा को अपनी असाध्य बीमारी की चिन्ता सताने लगी। चिन्ता ने उसके शरीर-बल के साथ मनोबल को भी कम कर दिया। वह सोचने लगा—ये सारे वैद्य और डॉक्टर निकम्मे हैं। मैंने इनको इतनी सुविधाएं दीं और ये मेरा इलाज भी नहीं कर सकते। जब मैं ही बीमारी से इस प्रकार तड़प रहा हूं तो जनता की क्या स्थिति होती होगी? लगता है किसी वैद्य-डॉक्टर को सही ज्ञान नहीं है और गहरा अनुभव नहीं है। ये लोग अंधेरे में पत्थर फेंक रहे हैं। क्या सचमुच ही मेरी बीमारी अचिकित्स्य है? क्या मैं जीवन से निराश होकर अब मृत्यु की प्रतीक्षा करता रहूं?

इधर राजा अपने दिन-दिन गिरते हुए स्वास्थ्य को लेकर चिन्तित है, उधर अन्त:पुर में रानियों की व्याकुलता बढ़ गई। मंत्रिमंडल में स्थिरता और निश्चिंतता से काम करने की स्थिति नहीं रही तो जनसाधारण भी अपने लोकप्रिय राजा की असामान्य स्थिति पर आंसू बहाने लगा। देश भर के डॉक्टर और वैद्य अपने भविष्य को असुरक्षित समझकर चिन्तातुर हो उठे। इस समय एक अनुभवी

वैद्य आया और वह राजा के विशेष परिचारकों से मिलकर बोला—राजा की चिकित्सा करने का एक अवसर मुझे दो। मुझे विश्वास है कि मैं उन्हें स्वस्थ कर दूंगा। परिचारकों को भरोसा तो नहीं हुआ, 'पर डूबते को तिनके का सहारा' की भांति वे उसे प्रसन्नता से राजा के पास ले गए। वैद्य के आत्मविश्वास से राजा को थोड़ी आशा बंधी। उसने अविलम्ब चिकित्सा करने का आदेश दे दिया।

चिकित्सा प्रारंभ करने से पहले वैद्य ने सही निदान करना चाहा। इसके लिए उसने राजा की नब्ज देखी। नब्ज-विज्ञान का विशेषज्ञ था वह। नाड़ी की जांच करने के बाद उसने कहा—बीमारी के सारे लक्षण 'आम वात' के हैं। नब्ज भी इस बात को पुष्ट करती है। रोग मेरी समझ में आ गया है। इसका उपचार भी मेरे पास है, पर परहेज बहुत है। क्या आप पथ्य-परहेज का पूरा ध्यान रख सकेंगे? राजा बोला—वैद्यजी! आप जैसे कहेंगे, वैसे ध्यान रख लूंगा। वैद्य ने कहा—राजन्, आम आपका जानी दुश्मन है। आपको आम छोड़ना पड़ेगा। राजा बोला—मैं आम छोड़ दूंगा। वैद्य ने अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए कहा—आम खाना ही नहीं छोड़ना है, उसे सूंघना, देखना और छूना भी नहीं है। और तो क्या, आम की बात नहीं सुननी है तथा आम के वृक्ष की छाया में भी नहीं बैठना है। राजा ने वैद्य की यह हिदायत सुनी और वह मन ही मन कहने लगा—आम को छोड़ना है, यह तो मरने से पहले ही मौत आ गई। राजा के चेहरे पर दुविधा के भाव पढ़कर वैद्य बोला—राजन्! जीवन कीमती है और आम कोई महत्त्वपूर्ण पदार्थ नहीं है। आप मन को मजबूत करें। आम से इतना परहेज रखेंगे, तभी मैं आपको बचा सकता हूं। राजा ने देखा कि अब तो बचने का कोई उपाय नहीं है, तब विवश होकर कहा—वैद्यजी! मैं अपने मन पर नियन्त्रण रखूंगा, आप चिकित्सा शुरू करें।

राजा की स्वीकृति पाकर वैद्य ने प्रधानमंत्री को बुलाकर कहा—यदि आप राजा को जीवित रखना चाहते हैं तो मेरी एक शर्त माननी होगी। मंत्री ने जिज्ञासा की तो वह बोला—राजा के लिए आम को चखना, सूंघना, छूना, उसकी बात करना या सुनना तथा आम की छाया में बैठना निषिद्ध है। आप इस काम में उनके उत्तर साधक बनें। उनके सामने ऐसा कुछ घटित होने का प्रसंग ही न आने दें तो मैं राजा के प्राणों की रक्षा कर सकता हूं। यह सब स्वीकार है आपको?

मंत्री ने उसी समय राजपुरुषों को बुलाकर आदेश दिया—'अपने राज्य की सीमा में जितने आम के पेड़ हैं, उन्हें अविलम्ब कटवा दो। जितने पके या कच्चे आम हैं, उन्हे नष्ट करवा दो और किसी भी देश से आमों का आयात होता हो, उसे सर्वथा बन्द कर दो। कोई भी नागरिक इस आज्ञा का अतिक्रमण करेगा, उसका जीवन खतरे में होगा। यह घोषणा सम्पूर्ण राज्य में करवा दो।' मंत्री के आदेश की क्रियान्विति हुई। राज्य की सीमा में आम का अस्तित्व ही समाप्त हो

गया। अब वैद्य ने चिकित्सा प्रारम्भ की। कुछ महीनों में ही राजा स्वस्थ हो गया। इस अकल्पित स्वास्थ्य-लाभ से राजा और प्रजा दोनों खुश थे। राजा ने वैद्य को अनेक बहुमूल्य उपहार दिए और ससम्मान विदा कर दिया। विदा होते समय वैद्य ने राजा और मंत्री दोनों को फिर सजग करते हुए कहा—मेरे निवेदन पर आप पूरा ध्यान रखें, अन्यथा बीमारी उग्र रूप धारण कर उभर सकती है। उसके बाद मेरे पास कोई उपचार नहीं है।

राजा स्वस्थ होकर अच्छे ढंग से राज्य-व्यवस्था का संचालन करने लगा। कभी-कभार उसे आम की याद आती थी पर वह शीघ्र ही मन को मोड़ लेता। इस प्रकार कई वर्ष व्यतीत हो गए। एक दिन राजा और मंत्री घोड़े पर सवार होकर चले। चलते-चलते दिग्भ्रम हो गया। वे रास्ता भूलकर जंगल में भटक गए। सही मार्ग की खोज में वे अपने राज्य की सीमा को लांघकर आगे निकल गए। इतने लम्बे समय तक घुड़सवारी करने के कारण राजा परिश्रान्त हो गया। उसने कहीं विश्राम करने की इच्छा व्यक्त की। मंत्री इधर-उधर विश्राम के लिए उपयुक्त स्थान की खोज कर ही रहा था कि राजा ने हाथ से संकेत कर कहा—देखो, उधर काफी वृक्ष दिखाई दे रहे हैं। वहां वृक्षों की गहरी छाया में थोड़ी देर विश्राम कर हम आगे चलेंगे। मंत्री राजा के साथ थोड़ी दूर चला कि उसे वहां आम्र-कुंज होने का आभास हो गया। वह दूसरी दिशा की ओर मुड़ता हुआ बोला—राजन्, इधर नहीं, उधर चलेंगे। क्यों? राजा के इस प्रश्न के उत्तर में मंत्री ने कहा—इधर आम के पेड़ हैं। उनकी छाया में बैठना हमारे हित में नहीं है। आम का नाम सुनते ही राजा के मुंह में पानी भर आया। अपनी इस दुर्बलता का अनुभव करने पर भी राजा ने कहा—मंत्री, हम बच्चे तो हैं नहीं। अपना हित-अहित अच्छी प्रकार समझते हैं। थोड़ी देर वहां विश्राम कर लेने मात्र से क्या होने वाला है? मंत्री का मन साक्षी नहीं दे रहा था। पर राजा नहीं माना और आम्रकुंज में पहुंचकर बैठ गया।

राजा को आम-वृक्ष की छाया में बैठा देख मंत्री का दिल धड़कने लगा। वह वहां से उठने के लिए जल्दी मचा रहा था। पर राजा जमकर बैठा था। थोड़ी-सी देर बाद ही उसने ऊपर देखना शुरू कर दिया। मंत्री बोला—राजन्, आम को देखना वर्जित है। राजा ने सुना-अनसुना कर दिया। मंत्री ने पुनः आगाह किया—आप स्वास्थ्य की सुरक्षा के लिए बनाए गए परकोटे को तोड़ रहे हैं। राजा ललचाई आंखों से एक-एक आम को देख रहा था। मंत्री की बात सुन वह बोला—ये आम किसी विशेष क्वालिटी के हैं। मैंने इतने आम खाए हैं, पर ऐसा आम आज तक नहीं देखा। देखो, आम क्या है, अमृत-फल है। मंत्री की धड़कनें और अधिक तेज हो गईं। उसने राजा से आग्रह किया कि अब यहां से चलना चाहिए। पर राजा नहीं माना। वह मन ही मन सोचने लगा—एक आम हाथ

लग जाए तो थोड़ा-सा स्वाद चख लूं। अब तो मुझे कोई बीमारी है नहीं, फिर एक आम क्या कर सकता है ?

संयोग की बात थी, राजा का मनोरथ फल गया। सहसा हवा का झोंका आया और एक आम टूटकर राजा की गोद में गिर गया। राजा ने तत्काल उसे हाथ में लिया। मंत्री राजा के हाथ से आम छीने, उससे पहले ही राजा ने उसको मुंह से लगा लिया। मंत्री निरुपाय कातर नयनों से राजा की ओर देखता रहा, राजा यह समझते हुए भी कि आम मेरे लिए घातक है, उसे खाने का लोभ संवरण नहीं कर सका।

मंत्री ने बहुत अनुनय-विनय किया, किन्तु राजा नहीं माना। उसने मंत्री को आश्वस्त करते हुए कहा—क्यों चिन्ता करते हो ? एक आम से क्या होने वाला है ? मंत्री बोला—अब तो भाग्य ने साथ दे दिया तो ठीक अन्यथा मौत सामने है।

राजा और मंत्री वहां थोड़ी देर विश्राम कर चले। वे राजभवन में पहुंचे, इससे पहले ही राजा बीमार हो गया। राजसभा में सब लोग उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे, पर राजा की स्थिति गम्भीर हो चुकी थी। अतः उसे महलों में पहुंचा दिया गया। मंत्री की प्रश्नायित आंखें राजा के चेहरे पर टिकी थीं। राजा ने कहा—मंत्री, वैद्य को बुलाओ, पर उसे मत बुलाना। मंत्री जानता था कि दूसरे वैद्यों के हाथ की बात नहीं है। किन्तु राजा के निर्देशानुसार उसने अन्य कई वैद्यों और डॉक्टरों को बुलाया। उपचार का कोई असर नहीं हुआ। तब उसी वैद्य को बुलाया गया।

राजा का निमन्त्रण पाते ही वैद्य के मन में सन्देह हो गया; क्योंकि कुपरहेज के बिना बीमारी के पुनः उभरने की कोई संभावना नहीं थी। राजमहल में पहुंच कर वैद्य ने सबसे पहले नब्ज देखी। नब्ज देखकर वह बोला—राजन् ! आपने आम खाया है···?

राजा ने उसे बीच में ही रोकते हुए कहा—मैं जानता था आप यही बात कहेंगे। पर आपको पता है, मेरे देश में एक भी आम का पेड़ नहीं है। यहां आम का आयात भी बन्द है, तब आम कहां से आयेगा ? आप विश्वास करें, मैंने आम नहीं खाया। मंत्री वैद्य की आंखें बचाकर पीछे खड़ा था। वैद्य ने मंत्री को आगे बुलाया और कहा—मंत्रीजी, नब्ज कह रही है कि राजा ने आम खाया है। मंत्री ने अर्थ-भरी दृष्टि से राजा की ओर देखा। राजा दो क्षण मौन रहा, फिर बोला—वैद्यजी, वैसे मैंने आम खाना एकदम छोड़ दिया। केवल एक आम खाया था। वैद्य दीर्घ निःश्वास छोड़ता हुआ बोला—अब बीमारी का प्रकोप इस सीमा तक हो गया है कि संसार की कोई भी दवा काम नहीं आ सकती। मैंने उसी समय कह दिया था कि आम आपके लिए मौत का साक्षात् निमन्त्रण है। आपको

मन, वाणी और कर्म से आम को छोड़ना है, पर आप संयम नहीं कर सके। अब मेरे पास कोई उपचार नहीं है।

राज-परिवार के आग्रह, मंत्री-परिषद् के अनुरोध और अन्य लोगों की प्रार्थना को टालना वैद्य के लिए संभव नहीं था। इसलिए उसने राजा को दवा दी, किन्तु उसे उस दवा के प्रभाव का विश्वास एक प्रतिशत भी नहीं था। वैद्य औषधि देकर चला गया। औषधि राजा को दी गई, पर कोई लाभ नहीं हुआ। तीन दिन में ही उस बीमारी ने राजा को मृत्यु की गोद में सुला दिया। कुछ क्षणों की मानसिक तृप्ति ने स्थायी तृप्ति की सारी संभावनाओं को समाप्त कर अतृप्त आकांक्षाओं को ठेठ तक झकझोर दिया।

अप्पेण मा बहु विलुंपहा

चार व्यापारी अर्थार्जन के लिए विदेश गए। चारों का उद्देश्य था—एक-एक हजार स्वर्णमुद्रा की प्राप्ति। उद्देश्य के अनुरूप उन्होंने पुरुषार्थ किया। पुरुषार्थ फला और वे कुछ ही वर्षों में एक-एक हजार स्वर्णमुद्रा प्राप्त करने में सफल हो गए। अब उन्हें घर-परिवार की याद सताने लगी। उन्होंने बिखरा हुआ व्यवसाय समेटा और घर पहुंचने के लिए चल पड़े।

यात्रा के लिए उनके पास कोई अच्छा साधन नहीं था। बहुत बार वे पैदल चलते और कभी-कभार ऊंटगाड़ी या बैलगाड़ी का उपयोग करते। प्रतिदिन वे किसी सराय या विश्रामगृह में कुछ समय ठहरते। वहां खाने-पीने का सामान खरीदते, भोजन पकाते-खाते और विश्राम कर अगली मंजिल के लिए प्रस्थान कर देते। इस प्रकार चलते-चलते कई महीने हो गए, फिर भी उनका गांव दूर था। वे अधिक उत्साह और लगन से अपना रास्ता तय कर रहे थे।

एक दिन वे भोजन और विश्राम के बाद अगली मंजिल के लिए चल रहे थे। चलते-चलते एक व्यापारी रुककर बोला—साथियो! आज हमने खाने-पीने का सामान खरीदा, उसके पैसे चुकाने में थोड़ी भूल हो गई। यह सुनकर तीनों व्यापारी एक बार तो चौंक गए। उन्होंने पूछा—क्या भूल हुई है? वह बोला—हमने आज दूकानदार को एक कागिणी (उस समय की एक मुद्रा, जो एक नये पैसे से कम मूल्य वाली होती है) अधिक दे दी। तीनों व्यापारी मुसकराकर बोले—एक कागिणी में हमारा क्या जाता है? रहने दो उसी के पास। साथियों की बात सुनकर वह बोला—हम महाजन हैं। हमें गणित की छोटी-सी भूल पर भी शर्म आनी चाहिए। यहां बात पैसे की नहीं, प्रतिष्ठा की है। दूकानदार क्या कहेगा? ऐसे वणिए आए थे जो हिसाब करना भी नहीं जानते। चलो, हम वापस चलें और उसे अपने कौशल का परिचय देकर आएं।

तीनों व्यापारी उसकी आग्रही वृत्ति से परिचित थे। उसके साथ विवाद करने से कोई अच्छा परिणाम नहीं आने वाला था। अतः वे बोले—हम उस गांव से पांच मील इधर आ गए हैं। हमारी इच्छा वापस जाने के लिए नहीं है।

हम तो तुम्हें भी यही परामर्श देते हैं कि मत जाओ। इतना कहने पर भी न मानो तो तुम इच्छा हो वैसे करो। तीनों साथियों द्वारा समझाने पर भी वह नहीं माना और कहने लगा—मैं पांच मील वापिस जाऊंगा, फिर आऊंगा। यह स्वर्णमुद्राओं का भार व्यर्थ ही क्यों ढोता रहूं, इस थैली को तुम ले जाओ। वे बोले—हम तो इतनी बड़ी जोखिम अपने पास नहीं रख सकते। लम्बा रास्ता है। कल कुछ हो जाए तो कौन जाने।

व्यापारी धुन का पक्का था। वह वापस मुड़ा और चलने लगा। इसी समय उसने सोचा—स्वर्णमुद्राओं में भार तो काफी है। थैली यहां गाड़कर चला जाऊं तो अच्छा रहेगा। उसने इधर-उधर दृष्टि घुमाकर देखा। कहीं कोई दिखाई नहीं दिया। उसने एक गड्ढा खोदा, मुद्राओं की थैली उसमें रखी और गड्ढे को पुनः भरकर चल पड़ा। पांच मील चलने के बाद वह उस गांव में दूकानदार के पास पहुंचा। दूकानदार को सम्बोधित करते हुए उसने नमस्ते की। दूकानदार ने पूछा—आप लोग जाने वाले थे, अभी तक गए नहीं क्या? व्यापारी बोला—पांच मील तक जाकर वापस आया हूं। आज हमने सौदा खरीदा तो आपको एक कागिणी अधिक दे दी गई। रास्ते में हिसाब किया तब पता चला। इसलिए मैं वापस आया हूं। दूकानदार ने सहज भाव से एक कागिणी उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा—ऐसा हो सकता है। लो, आप अब एक कागिणी ले जाओ। यह सुनकर व्यापारी तुनककर बोला—क्या आप मुझे धर्म में दे रहे हैं? ऐसे कैसे ले जाऊं? पहले पूरा हिसाब करो।

दूकानदार और व्यापारी दोनों ने मिलकर हिसाब किया। दाल, चावल, चीनी, आटा, मसाला आदि सब पदार्थों का पूरा हिसाब करने पर व्यापारी का कथन सत्य निकला। दूकानदार ने उसकी बुद्धि की प्रशंसा की। वह गर्व से सिर ऊंचा कर एक कागिणी लेकर पुनः वहां से चल पड़ा।

जिस समय व्यापारी ने गड्ढा खोदकर मुद्राओं की थैली वहां रखी, उस समय वृक्ष पर एक आदमी बैठा था। उसने उसकी सारी गतिविधि अच्छी प्रकार देख ली। व्यापारी कुछ दूर गया और वह नीचे उतर आया। उसने गड्ढा खोदा, स्वर्णमुद्राओं की थैली निकाली और उसके स्थान पर पत्थर रखकर गड्ढे को मिट्टी से भरकर वह चला गया।

व्यापारी दूकानदार से एक कागिणी लेकर चला और पांच मील का रास्ता तय कर उस स्थान पर पहुंचा। चिह्नित स्थान पर गड्ढा खोदा तो वहां थैली के बदले पत्थर रखे हुए मिले। पत्थरों को देख उसका सिर चकराने लगा, कलेजा मुंह को आने लगा। वह सिर थामकर बैठ गया और अपनी मूर्खता पर पश्चात्ताप करने लगा। पांच वर्ष के कठोर परिश्रम से जो पूंजी एकत्रित की, पारिवारिक जनों से दूर रहकर जो स्वर्णमुद्राएं एकत्रित कीं, उन एक हजार

स्वर्णमुद्राओं को एक काग़िणी के लिए खो देने पर वह व्यापारी अब सोचता है—साथी व्यापारियों द्वारा समझाया जाने पर भी मैं नहीं समझा। मैं अपने बुद्धि-कौशल की छाप छोड़ने गया था, पर मैंने जिस प्रकार की मूर्खता का परिचय दिया है, वणिक् जाति के लिए एक कलंक हो गया है। थोड़ी-सी उपलब्धि के प्रलोभन में मैंने अपना सब कुछ खो दिया। 'अप्पेण मा बहु विलुंपहा', थोड़े के लिए अधिक मत खोओ, इस आर्षवाणी को विस्मृत किया, इसीलिए अवांछनीय परिस्थिति को झेलना पड़ा है। अब क्या हो सकता है? घर जाकर क्या करूंगा? मित्रों से क्या कहूंगा? परिवार को क्या दूंगा? व्यापारी साथियों से कैसे मिलूंगा? उसी दुश्चिन्ता में वह आगे का रास्ता तय करने लगा। रास्ते में उसे कोई भी मिलता, वह बोलता—'अप्पेण मा बहु विलुंपहा'—थोड़े के लिए अधिक मत खोओ, अन्यथा मेरे जैसी दुर्दशा हो जाएगी।

कृतघ्न कौन ?

एक दिन जंगल के सारे पशु-पक्षी एकत्रित हुए। पशु-पक्षियों की सुरक्षा एवं सुविधा के सन्दर्भ में चर्चा चली। अनेक सुझाव आए। उन पर चिन्तन हुआ और कुछ निर्णय लिये गए। एक प्रस्ताव खरगोश ने रखा—सब प्राणियों में उत्कृष्ट प्राणी मनुष्य है। वह बुद्धिमान् है और अपनी बुद्धि के उपयोग से नये-नये आविष्कार कर रहा है। यद्यपि वह पशु-पक्षियों का दुश्मन है, पर हम उसके साथ मैत्री के लिए हाथ बढ़ाएं तो वह हमें संरक्षण दे सकता है। पालतू पशु-पक्षियों को वह अपने बच्चों से भी अधिक प्रेम देता है और उनका ध्यान रखता है। बन्दर ने खड़े होकर इसका समर्थन किया। प्रस्ताव पारित करने के लिए सभासदों की सहमति मांगी गई तो प्रायः सभी पशु-पक्षियों ने एक स्वर से मनुष्य को सबसे अच्छा प्राणी बताया। वह प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित हो, इससे पहले ही कौवा खड़ा हुआ और उसने अपना विरोध प्रदर्शित करते हुए कहा—आपके साथ मेरी सहमति नहीं है। यद्यपि मेरे असहमत होने से आपका प्रस्ताव रद्द नहीं हो जाएगा, क्योंकि बहुमत आपके साथ है। फिर भी आप कृपा कर प्रस्ताव की कॉपी पर नोट लगा लें कि एक पक्षी ने मनुष्य की खिलाफत में आवाज उठाई थी। मेरी दृष्टि में मनुष्य नीच है, कृतघ्न है, दुष्ट है और विश्वासघाती है। बहुमत से प्रस्ताव पारित हो गया और सम्पूर्ण जंगल में मनुष्य की बुद्धिमत्ता की प्रशंसा होने लगी।

पशु उस प्रस्ताव की क्रियान्विति के बारे में सोच ही रहे थे कि एक घटना घटी। एक भूखे बाघ ने किसी मनुष्य का पीछा किया। मनुष्य दौड़ा। दौड़ते-दौड़ते उसने एक वृक्ष देखा। वृक्ष की शाखा पकड़कर वह ऊपर चढ़ गया। वहां पहले से ही एक बन्दर बैठा हुआ था। बन्दर ने पूछा—क्या बात है? यों हांफते-हांफते कहां से आ रहे हो? मनुष्य बोला—जंगल में आया था लकड़ियां काटने के लिए। वहां एक बाघ मुझ पर झपटा। उससे बचकर आया हूं। देखो वह मेरे पीछे यहीं आ गया। बन्दर बोला—चिन्ता मत करो। अब तुम ऊपर आ गए हो। यहां बाघ का वश नहीं चलेगा। तुम निश्चिन्त होकर विश्राम करो। मनुष्य एक

डाली को पकड़कर बैठ गया और सुस्ताने लगा।

दो-चार क्षण बीते ही थे कि वहां बाघ पहुंच गया। बाघ ने देखा आदमी वृक्ष पर चढ़ गया है। अब शक्ति से नहीं, नीति से काम करना होगा। उसने भेद-नीति से काम लिया और बन्दर को सम्बोधित कर कहा—बन्दर भैया! आदमी अपना सदा का शत्रु है। इसने हमारी जाति को बराबर सताया है। हमारा परस्पर भाईचारे का रिश्ता है। तुम इस रिश्ते को समझो और आदमी को धक्का देकर नीचे गिरा दो। बन्दर सहजता से बोला—भाई, तुम्हारा कथन ठीक है, पर तुम जानते हो कि हमने आदमी के साथ मित्रता करने का प्रस्ताव पारित किया है। आदमी ने हमको सताया है तो हमने भी मनुष्य जाति का कम नुकसान नहीं किया है। फिर आज तो यह मेरा मेहमान है, मैं इसे धक्का नहीं दे सकता। बाघ ने एक बार फिर बन्दर को उकसाते हुए कहा—तुमने अब तक आदमी को पहचाना नहीं है। यह बड़ा धोखेबाज है, तुम मेरी बात मानो और इसे नीचे गिरा दो। बाघ के ऐसा कहने पर भी बन्दर वैसा करने के लिए तैयार नहीं हुआ। बाघ वृक्ष के नीचे बैठ गया।

बन्दर और मनुष्य बैठे बात कर रहे थे। बात करते-करते बन्दर को नींद आने लगी। मनुष्य ने उसको आलम्बन देकर लिटा दिया। थोड़ी देर में उसे गहरी नींद आ गई। बाघ ने अवसर देखा और मनुष्य को सम्बोधित कर कहा—कितना मूर्ख है तू आदमी! हम जानवर और तू मनुष्य। हमारा-तुम्हारा क्या सम्बन्ध? मैं भूखा हूं। मुझे खाने के लिए चाहिए। तू जब भी नीचे आएगा, मेरा ग्रास बन जाएगा। मैं तुझे छोड़ूंगा नहीं। हां, एक शर्त पर छोड़ सकता हूं—यदि तू बन्दर को नीचे गिरा दे तो मैं अपनी भूख इससे शान्त कर लूंगा। फिर मुझे तेरे से कोई मतलब नहीं। बोल, क्या कहता है?

मनुष्य ने बाघ की बात सुनी और वह बिना उत्तर दिए सोचने लगा। बाघ ने देखा—शिकार जाल में फंस रहा है। वह कोमल शब्दों में कहने लगा—मनुष्य! क्यों व्यर्थ ही अपनी जान जोखिम में डाल रहा है? देख, तेरे बाल-बच्चे हैं। तू नहीं रहेगा तो बच्चों को किसका सहारा होगा? अपना भला चाहता है तो तू मेरी बात मान और बन्दर को धक्का देकर नीचे गिरा दे।

मनुष्य प्रलोभन में आ गया। उसने आगे-पीछे की बात सोचे बिना ही बन्दर को धक्का दे दिया। धक्का लगते ही बन्दर गिरने लगा। गिरते-गिरते वह एक शाखा में उलझ गया और संभलकर वहां बैठ गया। मनुष्य बन्दर को बैठा देखकर गहरे सोच में डूब गया। बाघ ने अवसर देखा और बन्दर की ओर अभिमुख होकर कहा—बन्दर भैया! देख लिया तुमने मनुष्य को? कितना कृतघ्न होता है यह! तुम्हारे उपकार का कैसा बदला चुकाया इसने? अब भी तुम संभल जाओ और मनुष्य को धक्का देकर नीचे फेंक दो। यह सुनकर बन्दर ने मनुष्य की ओर

देखा। वह सिर से पांव तक कांप रहा था। बन्दर ने उसको अभय देते हुए कहा—यह कार्य मनुष्य कर सकता है, मैं नहीं कर सकता।

दो दिन प्रतीक्षा करने के बाद बाघ वहां से चला गया और मनुष्य भी नीचे उतरकर अपने घर पहुंच गया। वह स्वयं बच तो गया किन्तु पूरी मनुष्य जाति को कलंकित कर गया। बन्दर ने उसका स्वरूप साक्षात् देख लिया था। वह पुनः जंगल में गया और सब पशु-पक्षियों को एकत्रित कर बोला—उस दिन हमने कौवे की बात नहीं मानी, पर वह है शत-प्रतिशत सही। सारी घटना सुनकर पशु-पक्षियों ने दांतों तले अंगुली दबा ली। उन्होंने कौवे को पुरस्कृत किया और सर्व-सम्मति से यह प्रस्ताव पारित कर दिया कि संसार में सबसे अधिक कृतघ्न, विश्वासघाती और धोखेबाज मनुष्य है।

गुरु के वचन का प्रभाव

एक आचार्य परिव्रजन करते हुए राजगृही नगरी में पहुंचे। आचार्य के साथ अनेक ध्यानी, मौनी, तपस्वी और स्वाध्यायी मुनि थे। उनमें आषाढ़ मुनि अत्यन्त विनीत, गुरुभक्त और तपस्वी साधक थे। तीव्र तपस्या के द्वारा उन्हें कई लब्धियां (चामत्कारिक शक्तियां) भी उपलब्ध हो गई थीं।

एक दिन आषाढ़ मुनि भिक्षा के लिए शहर में गए। एक श्राविका ने उनको एक मोदक (लड्डू) भिक्षा में दिया। मोदक वास्तव में मोद देने वाला था। मुनि मोदक खाने के लिए आतुर हो उठे। सहसा उनके मन में आया—मेरे पास एक मोदक है, यह गुरुदेव को भेंट कर दूंगा, फिर मैं क्या खाऊंगा? एक मोदक और मिल जाए तो अच्छा रहे।

मुनि ने लब्धि का प्रयोग किया और बाल-मुनि का रूप बनाकर उसी श्राविका के घर में प्रवेश किया। श्राविका खुश हुई, उसने प्रसन्नतापूर्वक एक मोदक भिक्षा में दे दिया। मुनि की इच्छा फली पर एक विकल्प फिर खड़ा हो गया—बाल-मुनि को दिए बिना यह मोदक मैं कैसे खा सकता हूं?

इस समस्या को समाहित करने के लिए वे वृद्ध मुनि बनकर उसी घर में पहुंचे। श्राविका का मन बांसों उछलने लगा। अपने सौभाग्य की सराहना कर उसने वृद्ध मुनि को एक मोदक का दान दिया।

मुनि की समस्या अब भी समाहित नहीं हुई। इस बार वे रुग्ण मुनि का रूप बनाकर भिक्षा के लिए गए। झुकी देह, चेहरे पर झुर्रियां, लड़खड़ाते पांव, एक हाथ में लाठी और दूसरे हाथ में भिक्षा-पात्र। श्राविका ने रुग्ण मुनि के प्रति सहानुभूति व्यक्त करते हुए उन्हें भिक्षा में वही एक मोदक दिया। मुनि आषाढ़ अब अपने मूल रूप में परिवर्तित होकर चले।

इधर मुनि के रूप-परिवर्तन का क्रम चल रहा था, उधर अपने छत पर खड़ा एक नट विलक्षण प्रयोग को देख रहा था। यह व्यक्ति मंडली में सम्मिलित हो जाए तो हमारी नृत्य-विद्या संसार के बन जाए। यह सोच उसने जयसुन्दरी और भवनसुन्दरी नामक

को सम्बोधित किया। कन्याएं उपस्थित हुईं। नट उनकी ओर अभिमुख होकर बोला—तुम्हारी कला, रूप, लावण्य और वाक्पटुता सब व्यर्थ है, यदि तुम उस मुनि को सम्मोहित नहीं कर सकीं। मैं मुनि को अपने घर लेकर आता हूं, तुम अपनी तैयारी करो।

नट आषाढ़ मुनि का मार्ग रोककर खड़ा हो गया। वह मुनि से प्रार्थना करने लगा कि उसकी कुटिया को पवित्र कर भिक्षा ग्रहण करें।

मुनि को काफी विलम्ब हो चुका था, अब वे जल्दी-से-जल्दी गुरु के पास पहुंचना चाहते थे। उन्होंने कहा—मैं भिक्षा करके लौट रहा हूं, अब मुझे भिक्षा की अपेक्षा नहीं है। और कभी अवसर आयेगा तब देखूंगा।

मुनि का निषेध और नट का प्रबल आग्रह। मुनि किसी भी स्थिति में नट के घर जाने के लिए तैयार नहीं हुए, तब नट व्यंग्य भरी मुसकान बिखेरता हुआ बोला—एक ही घर में चार-चार बार मोदकों की भिक्षा लेने के बाद आपको हमारे घर आने की जरूरत ही क्यों होगी? ये शब्द मुनि के हृदय में तीर-से लगे। अब वे सकुचाते हुए नट के साथ चलने के लिए तैयार हो गए।

मुनि घर के द्वार पर पहुंचे। वहां दो अप्सराएं उनके स्वागत में खड़ी थीं। वे अतिशय भक्ति-भावना का प्रदर्शन करती हुई उन्हें ऊपर ले गईं। मुनि जल्दी-से-जल्दी भिक्षा लेकर लौटना चाहते थे और कन्याएं विलम्ब कर रही थीं। सबसे पहले उन्होंने मुनि की साधना, तपस्या और उपलब्धियों की प्रशंसा की। उसके बाद वे मुनि के सौन्दर्य और तारुण्य को शतगुणित रूप में विश्लेषित करने लगीं। प्रशंसा से अभिभूत मुनि ने सहज भाव से उनकी ओर देखा।

तीर निशाने पर लग रहा है, यह देखकर कन्याएं आगे बढ़ीं और बोलीं—मुनिराज! इस चिलचिलाती धूप में आप कहां जाएंगे? अभी आहार यहीं करें। फिर विश्राम करके शाम तक पधारना। हमें भी आपके सत्संग का अवसर मिलेगा।

अपने प्रति इस अकारण करुणा को देख मुनि ने कन्याओं की ओर स्नेह-भरी दृष्टि टिकाकर कहा—धूप तो चढ़ रही है, पर मुझे अपने गुरु के पास पहुंचना जरूरी है। उनकी आज्ञा बिना मैं यहां दिन-भर रह नहीं सकता।

—मुनिजी! आप भी कितने विचित्र हैं। यह अवस्था! ये कष्ट! और यह नियंत्रण! हमारी समझ में कुछ नहीं आ रहा है। हम तो अपने अतिथि को इस समय नहीं जाने देंगे। उत्तेजक हाव-भाव के साथ कन्याओं की इस बात पर मुनि का मन थोड़ा-सा आकृष्ट हुआ और जयसुन्दरी ने आगे बढ़कर मुनि के चरण-स्पर्श कर लिये।

मुनि के शरीर में बिजली-सी कौंध गई। उनके पांव लड़खड़ाने लगे तो दोनों बहनों ने हाथ का सहारा देकर उनको गिरने से बचाया। मुनि शरीर से तो नहीं

गिरे पर मन से गिर गए और अपने आपको भूल गए।

नट-कन्याओं ने अत्यन्त विनय भरा आग्रह किया—लम्बी प्रतीक्षा के बाद आज आपके चरण यहां टिके हैं। ये कोमल पांव और यह कठोर धरती? कितने कष्ट सहे हैं आपने! अब हम आपको यहां से जाने नहीं देंगी। यह घर आपका अपना घर है। आप जैसे रहना चाहें, हम आपकी सेवा में समर्पित हैं।

आषाढ़ मुनि अब मुनि नहीं रहे, उनका मन नट-कन्याओं के साथ रहने के लिए राजी हो गया। फिर भी अपने गुरु के प्रति उनके मन में आदर के भाव थे। इसलिए उन्होंने एक शर्त रखी कि वे अपने गुरु की अनुज्ञा लेकर वापस आयेंगे। नट-कन्याएं उन्हें जाने देना नहीं चाहती थीं, पर जब वे इस बात पर अड़े रहे तो उन्हें वापस आने के लिए वचन-बद्ध कर जाने दिया।

आचार्य आषाढ़मुनि की प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्हें सामने देखकर शान्त-भाव से पूछा—आषाढ़! आज इतना समय कहां लगा? यह भी भिक्षा लाने का समय है?

इतना सुनते ही आषाढ़मुनि उबल पड़े। आवेश में आकर वे बोले—इतना समय कहां लगा? कभी गोचरी करके देखो तब पता चले। इतनी धूप में घर-घर घूमना और ऊपर से आपकी डांट। लो, संभालो अपने पात्र और रजोहरण, मैं जाता हूं।

गुरु अपने शिष्य के मुंह से यह बात सुन विस्मित हो गए। उन्होंने अत्यन्त स्नेह से कहा—अरे आषाढ़! आज तुझे क्या हो गया? ऐसी बहकी-बहकी बातें क्यों कर रहा है?

मुनि आषाढ़ पहले तो बात टालते रहे, किन्तु गुरु के वात्सल्य और शांत भाव ने उनको सही स्थिति बताने के लिए बाध्य कर दिया। शिष्य की मनःस्थिति को समझकर गुरु ने उसे पुनः संयम में सुस्थिर करने का प्रयास किया। पर सफलता नहीं मिली। आखिर आचार्य ने कहा—तुम नट-कन्याओं से वचन-बद्ध होकर आए हो तो एक वचन मुझे भी दे सकते हो?

शिष्य सकुचाता हुआ बोला—गुरुदेव! नट-कन्याओं के पास जाने की बात छोड़कर आप कुछ भी कहेंगे, मैं उसे मानने के लिए संकल्पबद्ध हूं। आचार्य ने उनको संकल्प कराया—जिस कुल में मांस और मदिरा का प्रयोग होगा वहां वह नहीं रहेगा। गुरु-वचन का सम्बल साथ में लेकर वह चला और नट के घर पहुंच गया। वहां पहुंचकर उसने नट के सामने दोनों कन्याओं को अपना संकल्प सुनाते हुए कहा—मैं तुम्हारे साथ रह सकता हूं, पर इसके साथ एक शर्त है कि यदि यहां मदिरा का व्यवहार होता है तो मैं नहीं रह सकता हूं। नट-कन्याएं इस बात पर एक बार सहम गईं। उन्होंने सोचा—अभी तक साधुत्व का रंग पूरा उतरा नहीं है इसलिए ऐसी बात कर रहा है। जब हमारे साथ घुल-मिल जाएगा

तो स्वयं मदिरा-पान करने लगेगा। इस चिन्तन के साथ बोलीं—आप ऐसा क्यों सोचते हैं? यहां ऐसा प्रसंग उपस्थित होने का प्रश्न ही नहीं है। आषाढ़ ने नट-कन्याओं को इस बात के लिए वचन-बद्ध कर लिया कि जिस दिन उस परिवार में शराब का प्रयोग होगा, आषाढ़ यहां नहीं रहेगा।

मुनि आषाढ़ साधना से बहके और वासना के जंगल में भटक गए। लब्धि-प्रयोग, नृत्य-प्रदर्शन और नट-कन्याओं के साथ विलासपूर्ण जीवन—इस क्रम में भी उन्हें अपने गुरु का कथन सदा याद रहता।

एक दिन वे नृत्य-प्रदर्शन के लिए अकेले ही कहीं गए हुए थे। कार्यक्रम बदल जाने से वे निर्धारित समय से पहले घर पहुंच गए। घर पहुचकर देखते हैं कि जयसुन्दरी और भवनसुन्दरी शराब के नशे में पागल पड़ी हैं। उनका विकृत चेहरा, अनर्गल प्रलाप और उसको दिए गए वचन-भंग ने आषाढ़ के मन में ग्लानि उत्पन्न कर दी। जिन कन्याओं को दिया गया वचन निभाने के लिए वे अपने गुरु के निर्देश का अतिक्रमण कर यहां आए, पर यहां उनको दिए गए वचन का कोई मूल्य नहीं। वे वहां से मुक्त होकर आत्मारोहण के पथ पर बढ़ गए।

गुरु के एक वचन पर दृढ़ रहने से मुनि आषाढ़ पुनः संभले और अपनी मंजिल तक पहुंच गए।

मोतियों की खेती

प्राचीन समय की बात है। उन दिनों राजा देश का सर्वोच्च व्यक्ति होता था। प्रजा का एकमात्र आलम्बन राजा को माना जाता था। राजा भी अपनी प्रजा को आत्मज पुत्र-सा स्नेह देता था। उसके संवर्धन और संरक्षण का समग्र दायित्व उसी पर रहता था। राजा और प्रजा के मध्य कोई दूसरा व्यवधान नहीं होता था। राजा प्रजा के लिए समर्पित और प्रजा राजा के प्रति श्रद्धा-विनत। न किसी प्रकार का भय और न अराजकता। आत्मीयता और न्याय के आधार पर संप्रवर्तित शासन-पद्धति अपनी उपयोगिता अनुभव कराती रहती थी।

अपनी प्रजा के प्रति स्नेहशील और उदारवृत्ति एक राजा के मन में चाह जगी कि मैं अपनी प्रजा के साथ व्यक्तिशः सम्पर्क कर प्रत्येक व्यक्ति को अपने हाथ से कुछ दूं। चाह बलवती थी, इसलिए वह एक निर्णय के रूप में रूपान्तरित हो गई। निर्णय जनता के सामने आया और उसका हृदय से स्वागत हुआ। हर व्यक्ति अपने राष्ट्र-नायक के वरद हाथों से पारितोषिक पाने के लिए उत्सुक हो उठा।

शुभ मुहूर्त में काम शुरू हुआ। प्रतिदिन सैकड़ों व्यक्ति राजा की निकट सन्निधि प्राप्त कर अपने और राजा के चिरपालित स्वप्न को साकार करते। राजा ने अपने जीवन के कई वर्ष इस काम में लगाए। जब उसे विश्वास हो गया कि मेरा संकल्प पूरा हो चुका है तो उसने समग्र राज्य में उत्सव मनाने की घोषणा करवाई। राजभवन में समायोजित भव्य समारोह में उपस्थित एक आलोचक व्यक्ति ने उस उत्सव पर टिप्पणी करते हुए कहा—राजा का संकल्प अब तक पूरा नहीं हुआ है, फिर यह उत्सव क्या अर्थ रखता है ? बड़े आदमी को कहे कौन ? अभी तो सब चुप्पी साध कर बैठे हैं। उत्सव सम्पन्न होते ही राजा की मखौल उड़ाएंगे। यह संवाद राजा तक पहुंचा। राजा ने उसको अपने पास बुलाकर वस्तुस्थिति की जानकारी चाही। पहले तो आलोचक ने बात को टालना चाहा, पर राजा का आदेश कैसे टाला जा सकता था ! वह सहमते हुए बोला—राजन् ! अमुक गांव में अमुक चारण (बारठजी) रहता है। वह किसी के हाथ से दान नहीं लेता।

राजा ने वारठजी को अपने सामने उपस्थित करने का निर्देश दिया। लोगों ने उस विचित्र व्यक्ति के वारे में सुना जो राजा के सामने भी हाथ नहीं पसारता है। वे उसके वारे में अनेक प्रकार की कल्पना करने लगे। थोड़ी देर वाद एक फटेहाल व्यक्ति राजसभा में उपस्थित हुआ। सभासदों ने प्रश्नसूचक दृष्टि से उसको देखा। वह सहजभाव से राजा के सामने खड़ा था। राजा ने पूछा—वारठ जी ! क्या हाल है ? क्या काम करते हो ?

वारठजी वोले—राजन् ! सव ठीक-ठाक है। छोटा-सा घर है। छोटा-सा खेत है। मेहनत करता हूं और अपने परिवार का गुजारा कर लेता हूं।

राजा ने उनके प्रति वात्सल्य प्रदर्शित करते हुए कहा—और किसी चीज की आवश्यकता हो तो ले लीजिए। वारठजी वोले—भगवान् की कृपा से कोई कमी नहीं है। पास ही वैठे सचिव ने उनको परामर्श दिया—महाराज आपके प्रति इतने उदार हो रहे हैं। इनके वचन को विफल मत होने दें। आज आप अपेक्षित-अनपेक्षित कोई भी वस्तु राज्य-भण्डार से ग्रहण करें। यह आपका कर्तव्य है।

वारठजी अपनी वात पर अविचल थे। उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि मैं अपने जीवन में किसी के हाथ से दान नहीं लूंगा, यह मेरा दृढ़ संकल्प है। राजा का संकल्प उन्हें वताया गया, फिर भी वे अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ थे। साम, दाम, दण्ड और भेद किसी भी नीति से वारठजी का हृदय परिवर्तन नहीं हो सका। उन्होंने मौत से खेलना स्वीकार कर लिया, पर अपने संकल्प को अक्षुण्ण रखा।

इधर राजा का मन ग्लानि और पश्चात्ताप से भर गया। उसने अपनी कुलदेवी की उपासना की। देवी प्रसन्न हुई। राजा ने अपना संकल्प पूरा करने के लिए वारठजी को दान देने का उपाय पूछा। देवी ने इस कार्य को असम्भव वताया। राजा खिन्न होकर वोला—मां ! मेरा संकल्प टूट रहा है। देवी ने कहा—तुम्हारा संकल्प सात वार टूटे, चारण दान नहीं लेगा। राजा और अधिक विनम्र होकर वोला—मां ! तुम्हारी शरण पाकर भी मेरा संकल्प टूट गया तो फिर मेरा आलम्वन क्या होगा ? कोई रास्ता निकालो और मेरी सहायता करो। यह सुनकर देवी वोली—एक उपाय मेरे ध्यान में है, किन्तु उसके लिए तुझे कड़ी तपस्या करनी होगी। राजा उत्साहित होकर कहने लगा—मां ! मैं सव कुछ करने के लिए तैयार हूं। तुम मुझे अविलम्व कोई उपाय वताओ। देवी उसे एक प्रक्रिया वताकर अदृश्य हो गई।

जेठ का महीना था। मध्याह्न की चिलचिलाती धूप थी। राजा पैदल चलकर वारठजी के खेत तक पहुंचा। वहां उसने देखा—वारठजी अपने पुत्र के साथ काम में लीन हैं। दो दिन पहले वर्षा हुई थी, इसलिए वे अपना खेत वो रहे हैं। खेत छोटा ही है, पर हल जोतने के लिए वैल नहीं हैं। कभी पिता और कभी पुत्र हल में जुतकर काम कर रहे हैं। राजा उनके सामने खड़ा था। वदली हुई वेशभूषा के

कारण उसकी सही पहचान नहीं हो सकी। बारठजी ने एक अपरिचित को सामने खड़ा देखकर पूछा—क्यों भाई ! क्या बात है ?

राजा—मैं तुम्हारी निर्दयता देख रहा हूं। इस तपती दुपहरी में इस दुधमुंहे बच्चे से इतना कठोर श्रम लेते हो। इसको कुछ हो गया तो? बारठजी—भाई ! पेट पापी है। इसके लिए सब कुछ करना पड़ता है। मेरा बेटा मुझे भी प्यारा है, पर मैं कर भी क्या सकता हूं?

राजा—बैल के स्थान पर बच्चे को जोतकर तुम कसाई बन रहे हो। यह मर गया तो फिर सिर पर हाथ रखकर रोना पड़ेगा।

बारठजी—(कुछ उत्तेजित होकर) आए हो बड़ी-बड़ी बातें बनाने, मन में इतनी दया है तो बच्चे के स्थान पर तुम क्यों नहीं जुत जाते ?

राजा—लो छोड़ो बच्चे को, मैं तैयार हूं।

बारठजी ने बच्चे को वहां से अलग कर राजा को हल में जोत दिया। गर्मी का मौसम, शरीर की नाजुकता और इतना कड़ा परिश्रम। राजा थोड़ी देर में ही परिश्रान्त होकर हांफने लगा। उसका शरीर पसीने से तरबतर हो गया और अब वह एक कदम भी चलने में असमर्थता का अनुभव करने लगा।

बारठजी राजा की स्थिति पर द्रवित होकर बोले—चल, हट। मुंह की मक्खियां तो उड़ती ही नहीं हैं और खेत जोतने के लिए तैयार हुआ है। मेरा बेटा तो मरेगा या नहीं, तू पहले ही मर जाएगा और हत्या का पाप मेरे सिर चढ़ाएगा।

राजा तत्काल हल छोड़कर दूर हो गया। घंटों बैठकर सुस्ताने के बाद वह सामान्य स्थिति में लौट पाया। वहां से चलते समय राजा ने बारठजी को सम्बोधित कर कहा—मेरे द्वारा निकाले गए इन तीन-चार ऊमरों का ध्यान रखना। इनकी व्यवस्था अलग से करना। यह बात सुन बारठजी मुंह बनाते हुए बोले—इनकी अलग से व्यवस्था करूं, इनका ध्यान रखूं, क्या इनसे मोती निपजेंगे ?

राजा ने शान्त भाव से कहा—भाई ! समय की बात है। मेरे बोए बीजों से मोती भी फल सकते हैं। बारठजी ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया। उन्हें न कोई आशा थी और न सन्देह। समय बीता। फसल पकी। फसल काटते समय उन्होंने देखा कि उस अपरिचित व्यक्ति ने जहां हल खींचा है, वहां ज्वार के स्थान पर मोती चमचमा रहे हैं। आश्चर्य-मिश्रित प्रसन्नता के साथ वह सिर पकड़ कर बैठ गया और व्यथित मन से गुनगुनाने लगा—

जो जाणत ए बात, इण स्यूं मोती नीपजै।
(तो) बाहत सारी रात, जेज न करतो अधघड़ी॥

शब्दों से अतीत

अपने साथियों से विछुड़ा हुआ राजा जंगल में भटक गया। भयावह अटवी, मध्याह्न का समय, यात्रा की परेशानी, भूख-प्यासजन्य परिक्लान्ति और वक्रगति अश्व की सवारी। राजा थककर निराश हो गया। सहसा उसे एक झोंपड़ी दिखाई दी। झोंपड़ी से निकलते हुए भील को देखकर वह थोड़ा आश्वस्त हुआ। निकट पहुंचकर राजा ने उसका परिचय पूछा। भील कुछ समझ नहीं पाया। राजा और भील अपनी-अपनी भाषा में बोल रहे थे। पर दोनों ही कुछ समझ नहीं पाए। आखिर संकेतों के द्वारा राजा ने पानी पिलाने के लिए कहा। भील अपने जीवन में कभी शहर या देहात में नहीं गया था। जंगल में वनी झोंपड़ी उसका घर था और जंगल ही उसके लिए शहर था। फिर भी मानवीय संवेदना से प्रेरित होकर उसने राजा को हार्दिक आतिथ्य दिया। भूख और प्यास से व्याकुल राजा ने रूखी रोटी और मीठी छाछ खाकर ठण्डा पानी पिया। यह भोजन राजा को वहुत रुचिकर लगा। भोजन और विश्राम के वाद राजा ने स्वस्थता का अनुभव किया।

उधर राजा से विछुड़े हुए उसके साथी उसे खोजते-खोजते भील की झोंपड़ी तक पहुंच गए। राजा ने उनको अपनी रामकहानी सुनाते हुए कहा—आज मुझे यह भील नहीं मिलता तो मैं अव तक जीवित नहीं रह सकता था। उपकारक भील के प्रति राजा का मन करुणा और कृतज्ञता से भर गया। वह उसे अपने नगर ले गया। वहां उसे सव प्रकार की सुख-सुविधाओं के वीच रखा गया। भील के लिए सव कुछ नया था, फिर भी उसे वहां विशेष प्रकार की आनन्दानुभूति होती रही।

राजकीय सुविधाओं का उपभोग करता हुआ वह अरण्यवासी भील एक वार तो अपने घर और परिवार सवको भूल गया। समय अपनी गति से वह रहा था। शीतकाल के वाद गर्मी आयी। ग्रीष्म के वाद वर्षा ऋतु ने अपना प्रभाव दिखाया। एक दिन भील महल की छत पर चहलकदमी कर रहा था। आकाश में घिरे हुए वादल, विजली की चमक और रह-रहकर होने वाली मेघ-गर्जना ने मानो उसको नींद से जगा दिया। वह घर पहुंचने के लिए आतुर हो उठा। उसने सोचा—इस

समय मैं खेत नहीं पहुंचा तो साल भर बैठा-बैठा क्या करूंगा ? और क्या परिवार को खिलाऊंगा ?

राजा के पास पहुंचकर भील ने संकेत से समझाया कि अब मैं अपने घर जाऊंगा। राजा ने उसको वहीं रहने के लिए कहा, किन्तु वह नहीं माना। उसकी आतुरता देखकर राजा ने उसको घर जाने की अनुमति दे दी।

जिस समय वह घर पहुंचा, उसके पारिवारिक जनों और मित्रों ने उसको घेर लिया। इतने समय तक वह कहां था ? कैसे था ? क्या करता था ? क्या खाता था ? प्रश्नों की एक लम्बी शृङ्खला में वह उलझ गया। उसकी संवेदना के स्तर पर हर प्रश्न का उत्तर था। किन्तु अनुभूति को अभिव्यक्ति देने वाले भाषा-बोध के अभाव में वह कुछ बता नहीं सका। क्योंकि वह उन-उन परिस्थितियों से गुजरने पर भी उनके संदर्भों से अनजान था। महल क्या होता है ? मिठाई क्या होती है ? राजा क्या होता है ? राज्य क्या होता है ? इन तथ्यों से अवगत न होने के कारण वह सब कुछ देखने-समझने पर भी उस सम्बन्ध में दूसरों को कुछ नहीं बता सका।

जिसके पास अपनी प्रज्ञा नहीं

किसी शहर में एक ब्राह्मण रहता था। मिलनसार और अनुभवी व्यक्ति था। देहाती लोगों के लिए वह सिद्ध पुरुष था। ज्योतिषशास्त्र और तन्त्रशास्त्र का थोड़ा-बहुत ज्ञान होने के कारण देहातों में उसका अच्छा प्रभाव था। ग्रामीण लोग अपनी समस्या का समाधान उसी से पाते थे। तिथि या मुहूर्त्त बताना हो, बीमारी में दवा का प्रयोग बताना हो, कोर्ट-कचहरी सम्बन्धी कानून समझाना हो, चाहे आपसी विवाद निपटाना हो, पंडितजी की पूछ हर काम में होती थी। धीरे-धीरे पंडितजी की प्रसिद्धि हुई और उसके साथ ही उसका काम बढ़ गया। दिनभर वह घर से बाहर लोगों में मस्त रहता और रात घिरने के बाद जब घर लौटता तो बुरी तरह थक जाता था।

घर पहुंचते ही पत्नी अपनी समस्याओं का पिटारा खोलकर बैठती, पर उनका समाधान देने के लिए उसमें न किसी प्रकार की शक्ति होती और न रुचि रहती। गहरी थकान के बाद उसे विश्राम की जरूरत होती। उस समय सामने ढेर सारे काम देखकर वह बहुत बार मानसिक रूप से असन्तुलित हो जाता।

पति की अपने प्रति उदासीनता और उपेक्षा से पत्नी परेशान थी और असन्तुष्ट भी। वह कई बार कहती, अच्छे बड़े आदमी बने दुनिया का कल्याण करते हैं और घर का कुछ ध्यान ही नहीं है। 'घर के पूत कंवारे, पाड़ौसी को फेरे' आपकी इस नीति से घर उजड़ रहा है। इस ओर भी कुछ ध्यान दो। ब्राह्मण अपनी पत्नी की परेशानी को समझता था, पर कर कुछ भी नहीं सकता था।

एक बार उसने तन्त्र-विद्या के प्रयोग से एक दैत्य को साधा। मन्त्र सिद्ध हुआ तो दैत्य सामने आकर खड़ा हो गया और बोला—मैं उपस्थित हूं तुम्हारी सेवा में। बोलो, क्या चाहते हो ? ब्राह्मण इस अप्रत्याशित घटना से स्तब्ध रह गया। वह दो क्षण तक कुछ बोल नहीं सका। आखिर साहस जुटाकर बोला—आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे एक दिन का समय दीजिए। मैं कुछ सोचकर अपनी मांग प्रस्तुत करूंगा। दैत्य बोला—तथास्तु ! जाओ, मैं तुम्हें समय देता हूं। चौबीस

घण्टे के भीतर-भीतर जो कुछ मांगना है मांग लो। ब्राह्मण क्या मांगे ? वह असमंजस में पड़ गया। बहुत सोच-समझकर उसने तय किया कि ब्राह्मणी से परामर्श करके मैं इस सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय करूंगा।

ब्राह्मण अब सारे काम छोड़कर अपने घर की दिशा में चला। रास्ते में कुछ मित्र मिले। उसे जल्दी-जल्दी चलते देख मित्रों ने पूछा—पंडितजी ! क्या बात है? आज उतावले-उतावले कहां जा रहे हैं? ब्राह्मण ने दैत्य द्वारा प्रदत्त वरदान की बात बताई तो मित्र उछल पड़े। उन्होंने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा—भाई ! इस सम्बन्ध में भाभी से क्या सलाह लोगे? ऐसा अवसर बार-बार नहीं आता है। कोई ऐसी चीज़ मांग लो जो तुम्हारी सात पीढ़ियों को सुखी कर दे। ब्राह्मण बोला—दोस्तो तुम्हारा कथन सही है, पर तुम्हारी भाभी से पूछे बिना मैं कुछ भी नहीं मागूंगा।

मित्रों के परामर्श की उपेक्षा कर वह सीधा घर पहुंचा। पत्नी उसे समय से पहले घर में देख चकित हो गई। उसकी जिज्ञासा को समाहित करते हुए उसने सारा घटनाचक्र कहकर सुना दिया। और बोला—तुम बताओ, मुझे क्या मांगना चाहिए ?

ब्राह्मणी अपने पति की इस सिद्धि से बहुत खुश हुई। वरदान मांगने के प्रश्न पर उसे सबसे पहले अपनी समस्या दिखाई दी। वह बोली—आजकल आप व्यस्त बहुत हो गए हैं। आपके पास इतना काम रहता है, घर पहुंचने के बाद आप मेरे साथ दो बात भीं नहीं कर सकते। ऐसी स्थिति में क्या यह अच्छा नहीं होगा कि आप एक मुंह और मांग लें ? आपका एक मुंह वहां काम करेगा और दूसरा घर में। एक मुंह बोलेगा तो दूसरा विश्राम करेगा। इस क्रम से आप भी श्रान्त नहीं होंगे और मेरी समस्याएं भी सुलझती जाएंगी।

ब्राह्मण को अपनी पत्नी का प्रस्ताव पसन्द आ गया। वह दौड़ा-दौड़ा साधना-स्थल पर गया। दैत्य उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। ब्राह्मण को देखते ही वह बोला—क्या चाहिए तुम्हें ? ब्राह्मण ने कहा—दैत्यराज ! मुझे बोलने का काम अधिक पड़ता है, इसलिए आप मुझे एक मुख और दे दीजिए। दैत्य मन-ही-मन मुसकराता हुआ बोला—तथास्तु ! देखते-देखते ब्राह्मण के कंधे पर दूसरा सिर उग आया। ब्राह्मण खुश होकर शहर की ओर चला। रास्ते में उसे कुछ व्यक्ति मिले। वे उसे देखकर घबरा गए। वे उल्टे पांव दौड़कर शहर में पहुंचे और चौराहे पर खड़े होकर चिल्लाने लगे—नगरवासियो ! सावधान हो जाओ, शहर की ओर कोई राक्षस आ रहा है। इस अप्रत्याशित सूचना से नागरिक भयभीत हो गए। कुछ लोग घरों में जाकर छिप गए और कुछ हाथ में शस्त्र लेकर राक्षस का मुकाबला करने खड़े हो गए। थोड़ी देर में ही वह लोगों के निकट पहुंचा। वह लोगों से कुछ कहे इससे पहले ही उस पर एक साथ कई प्रहार हुए और वह

शिथिल होकर नीचे गिर पड़ा। गिरते ही उसके प्राण-पखेरू उड़ गए।

कुछ ही समय में यह घटना पूरे शहर में फैल गई। ब्राह्मणी के पास भी यह बात पहुंची, वह दौड़ी-दौड़ी घटना-स्थल पर पहुंची और छाती पीट-पीटकर रोने लगी। पर अब क्या हो सकता था ? जिसने भी ब्राह्मण के दो मुंह होने का वरदान मांगने की बात सुनी, उसे ब्राह्मणी की बुद्धि पर तरस आ गया। एक संस्कृत कवि ने इस घटना पर टिप्पणी करते हुए कहा—

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा, मित्रोक्तं न करोति यः।
स एव निधनं याति सुबुद्धि र्ब्राह्मणो यथा ॥

बुलबुल की शिक्षाएं

किसी समय एक बहेलिए ने एक बुलबुल को पकड़ लिया। बहुत सुन्दर थी बुल-बुल, बच्चे उसे देखते ही खुश हो जाते और बड़े-बूढ़े भी उसके मधुर गीत पर झूम उठते, पर अब उसे अपना अन्त सामने दिखाई देने लगा। वह तड़प रही थी और सोच रही थी बहेलिए से मुक्त होने का कोई उपाय। सहसा उसकी आंखों में चमक आ गई। उसने अनुनय भरे शब्दों में बहेलिए से कहा—भैया! इस समय मैं तुम्हारी पकड़ में हूं। तुम चाहो तो मुझे मार सकते हो और चाहो तो उबार सकते हो। क्या मेरे नन्हे-से प्राणों पर अनुकम्पा कर तुम मुझे छोड़ दोगे? बुलबुल! तू मेरी खुराक है, तू मेरी जीविका है, मैं तुझे कैसे छोड़ सकता हूं? बहेलिए का सीधा-सपाट उत्तर सुनकर बुलबुल उदास हो गई। पर उसने एक बार फिर साहस जुटाकर कहा—भैया! मैं तुम्हें तीन शिक्षाएं बताना चाहती हूं, उनमें प्रत्येक शिक्षा लाख-लाख रुपये के मूल्य वाली है। क्या तुम सुनना चाहोगे?

बहेलिया शिक्षाएं सुनने के लिए तैयार हो गया। उसकी उत्सुकतापूर्ण सहमति पाकर वह फिर बोली—मैं तुम्हें वे बातें बताऊं, उसके लिए एक शर्त है। शर्त यही है कि मुझे छोड़ना पड़ेगा। बहेलिया दुविधा में फंस गया। बुलबुल को छोड़े तो उसकी जीविका जाए और न छोड़े तो वे शिक्षाएं जाएं। आखिर उसने जीविका का लोभ संवरण किया और कहा—पहले तेरी बातें सुन लूं, फिर तुझे मुक्त कर दूंगा। बहेलिए की प्रश्नायित आंखों में झांकते हुए बुलबुल मुसकराती हुई बोली—

१. अतीत की चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

२. सुनी-सुनायी बात पर विश्वास नहीं करना चाहिए।

३. अनधिकार चेष्टा नहीं होनी चाहिए।

बहेलिए को ये तीनों बातें बहुत पसन्द आयीं। उसने खुश होकर चिड़िया को बन्धन से मुक्त कर दिया। बन्धन से छूटते ही बुलबुल उड़ी मने पर जाकर बैठ गई। अब वह उस बहेलिए को सम्बोधित कितने मूर्ख हो तुम? मैंने बहुत लोग देखे हैं, पर तेरे-जैसा

मैंने तुम्हें थोड़ा-सा फुसला दिया और तुमने हाथ में आया शिकार छोड़ दिया। ये बातें तो तुम्हें कोई भी सुना सकता था।

बहेलिया बुलबुल की बात सुन सोच में पड़ गया। वह चिन्तन करने लगा— सचमुच ही मैंने बड़ी भूल की है। इतना अच्छा शिकार हाथ लगा और मैं इस छोटी-सी चिड़िया की बातों में आ गया। काश ! मैं कुछ समझदारी से काम लेता। हाय ! मैंने ऐसा क्यों किया ?

बहेलिया अपने अतीत को भूल नहीं पा रहा था। उसकी आंखों में पश्चात्ताप के आंसू थे। वह कुछ और सोचे, इससे पहले ही बुलबुल चहक उठी—भैया ! तुम मुझे मार डालते तो तुम्हारे हाथ में सवा लाख का हीरा आ जाता। वह हीरा मेरे गले में है। यही तो कारण है मैं इतनी मधुर बोल लेती हूं पर दूसरे पक्षी नहीं बोल सकते।

बहेलिया इस बार भी बहक गया। वह चिड़िया द्वारा कथित बात को इतना सच मान बैठा कि अपने भाग्य को कोसने लगा। जो बात उसने सुनी, उसकी सचाई के बारे में बिना जानकारी किए ही वह बौखला गया। उसकी बौखलाहट कम हो उससे पहले ही बुलबुल बोली—भैया ! चिन्ता क्यों करते हो ? पुरुषार्थ करो और कर लो मुझे अपने अधीन।

बुलबुल की यह बात सुनते ही बहेलिया ने तीर-कमान उठाया और निशाना साध कर तीर छोड़ दिया। तीर जाकर बुलबुल के लगे, इससे पहले ही वह वृक्ष छोड़कर उड़ गई। बहेलिया हाथ मलता ही रह गया।

बुलबुल उड़ रही थी निस्सीम गगन में और मन-ही-मन मुसकरा रही थी उस आदमी पर, जिसने अभी-अभी सुनी तीनों शिक्षाओं को तत्काल भुला दिया। कितना भुलक्कड़ होता है मनुष्य ! कितना अविवेकी होता है वह, जो अपने किए पर भी पछताता है और अनकिए पर भी !

सही विधि का मूल्य

एक था व्यापारी। समुद्र पार उसका व्यापार चलता था। एक बार वह ऐसे द्वीप की यात्रा पर निकला, जहां गाय नहीं होती थी। वहां के निवासी गाय के बारे में कुछ जानते ही नहीं थे। व्यापारी की शारीरिक स्थिति ऐसी थी कि वह गाय के दूध बिना नहीं रह सकता था। उसने गाय साथ ले जाने की व्यवस्था कर ली। जलपोत में एक ओर वह अपने कर्मकरों और माल के साथ बैठा था। दूसरी ओर गाय और बछड़े को बांध दिया गया। निश्चित स्थान पर पहुंचकर जलपोत रुका। माल के साथ गाय-बछड़े को भी तट पर उतार लिया गया। वहां रहने वाले लोगों ने गाय और बछड़े को बहुत आश्चर्य के साथ देखा।

व्यापारी शहर में पहुंचा। वहां उसके परिचित व्यापारी रहते थे। ठहरने की अच्छी व्यवस्था हो गई। अपने व्यापार को बढ़ाने की दृष्टि से उसने राजा से सम्पर्क करना उचित समझा। एक दिन वह अपने देश से लाए हुए विविध प्रकार के उपहार लेकर राजदरबार में उपस्थित हुआ। अपने उपहारों के साथ वह मिश्री और केसर मिला हुआ दूध का कटोरा भी ले गया था। राजा ने जब वह विचित्र वस्तु देखी तो पूछा—यह क्या है? व्यापारी इसी अवसर की प्रतीक्षा कर रहा था। वह विनम्रता के साथ बोला—राजन्! यह एक फल है। बहुत मीठा और स्वादिष्ट है यह फल। आप चखकर तो देखें। राजा ने कटोरा हाथ में उठाया और पूछा—किधर से खाऊं इसे? व्यापारी मन-ही-मन हंसता हुआ बोला—आप इसे पी लीजिए। राजा ने दूध का स्वाद चखा और एक ही घूंट में कटोरा खाली कर दिया। वह उसकी मधुरता पर मुग्ध हो गया। प्रशंसा के भाव में राजा बोला—बड़ा अच्छा फल है यह, किस वृक्ष के लगता है? व्यापारी बोला—महाराज! वह एक घूमता-फिरता वृक्ष है और मैं उसे अपने साथ लाया हूं। यह सुनकर राजा खुश हुआ। वह उस फल के स्वाद से इतना अभिभूत हो गया कि बिना एक क्षण की प्रतीक्षा किए बोला—तुम जब तक यहां रहो, फल खिलाते रहना, मैं तुम्हारा सारा कर माफ कर दूंगा। व्यापारी प्रसन्न होकर बोला—राजन्! मुझे तो आपकी कृपा चाहिए। मेरे पास जो कुछ है, आपकी ही कृ रा

मैं स्वयं आपके कोई काम आ सकूं, वह दिन धन्य होगा।

दूसरे दिन व्यापारी दूध की खीर बनाकर लाया। राजा विस्मित होकर बोला—यह क्या है? व्यापारी—उसी वृक्ष का फल है, स्वामिन्! एक ही वृक्ष कई प्रकार के फल देता है, यह भी नयी बात थी। राजा ने फल चखा। आज वह कल से भी अधिक स्वादिष्ट था। राजा ने उसको अन्तःपुर में भेज दिया। रानियों ने भी उसको थोड़ा-थोड़ा चखा पर उनका जी नहीं भरा। वे बार-बार होंठ निपोरती रहीं और उस नये खाद्य पदार्थ की प्रशंसा करती रहीं। उसके बाद वह व्यापारी कभी छन्ना, कभी कलाकन्द, कभी रसगुल्ले, कभी सन्देश, कभी दही, कभी चमचम, कभी पेड़े, कभी कस्टर्ड, कभी रबड़ी, कभी बर्फी, कभी कुछ और कभी कुछ—नित नयी चीजें बनाकर ले जाता और उन्हें खिलाता। इस प्रकार उसने समूचे राजपरिवार पर अपना कभी नहीं मिटने वाला प्रभाव छोड़ दिया। राज्य की ओर से उसे व्यापार हेतु सब सुविधाएं प्राप्त थीं। घर से चलते समय वह दो महीने व्यापार करने की इच्छा से चला था। पर इतनी सुविधाएं और कर से मुक्ति पाकर उसका मन बढ़ गया। उसने छह मास तक वहां व्यापार किया।

छह मास तक व्यापार में करोड़ों का लाभ प्राप्त कर व्यापारी स्वदेश जाने के लिए तैयार हुआ। राजा उसे अपने पास बुलाकर बोला—तुम अपने देश जा रहे हो, यहां कोई तकलीफ तो नहीं हुई? व्यापारी ने उत्तर दिया—राजन्! आप मुझ पर इतनी कृपा रखते हैं, तब तकलीफ कैसे होती? मेरा तो यहां से जाने का मन ही नहीं करता है, पर बच्चों का मोह है इसलिए जाना पड़ेगा। राजा बोला—तुम अपने उस वृक्ष को साथ ले जाओगे या यहीं छोड़ जाओगे? व्यापारी ने प्रसन्नतापूर्वक गाय वहां छोड़ दी और चल पड़ा अपनी मंजिल की ओर।

राजा ने अपने कर्मकरों को बुलाकर गाय की ओर इंगित करते हुए कहा—हमारे एक परदेशी व्यापारी की भेंट है यह वृक्ष, इसे संभालकर रखो और जो भी फल दे लाकर हमारे सामने रख दो। कर्मकर गाय को एक साफ-सुथरे कमरे में ले गए और हाथ में स्वर्णपात्र एवं रजतपात्र लेकर खड़े हो गए। थोड़ी देर बाद गाय ने प्रस्रवण किया। वे उसे पात्र में भरकर ले गए। राजा ने देखा—आज जो पदार्थ आया है वह बिलकुल नया है। प्रतिदिन नये-नये फल देता है यह वृक्ष। नये फल का स्वाद पाने की उत्सुकता से उसने पात्र को मुंह पर लगाया। एक घूंट मूत्र पीया और कड़वाहट से उसके मुंह का स्वाद बिगड़ गया। 'आज का फल तो कसैला है', इतना कहकर उसने स्वर्णपात्र अलग रख दिया। अब वह दूसरे प्रकार के फल की प्रतीक्षा में था।

कर्मकर पहले की अपेक्षा अधिक सावधान होकर खड़े थे। इस बार गाय ने गोबर किया। वे उसे चांदी के प्याले में भरकर ले गए। राजा ने चम्मच से उठा-

कर एक ग्रास मुंह में डाला और उसकी गन्ध से व्याकुल होकर उसे पुनः उगल दिया। दो बार धोखा खाने के बाद राजा व्यापारी से रुष्ट हो गया। उसने राज-पुरुषों को बुलाकर कहा—आज प्रातः जो व्यापारी यहां से गया है, उसे पकड़कर ले आओ। उसने मुझे धोखा दिया है। हमने उसको जितना भला समझा, वह उतना ही बदमाश निकला।

राजपुरुष गए और पहले पड़ाव पर ही उस व्यापारी को घेरकर खड़े हो गए। वह पहले से ही जानता था कि ऐसा कुछ घटित होने वाला है, इसलिए वह घबराया नहीं, प्रत्युत बोला—कहिए, क्या बात है? राजपुरुष बोले—हमारे राज्य में आपको इतनी सुविधा मिली और आप स्वयं ही राजा को धोखा देकर जा रहे हैं? कैसा मजाक करके आए हैं आप राजा के साथ? आपका वह वृक्ष एक प्रश्न-चिन्ह बन गया है वहां। राजा का आदेश है कि हम आपको गिरफ्तार कर ले चलें। व्यापारी मुसकराता हुआ बोला—ओह! आप उस वृक्ष की बात कर रहे हैं। वृक्ष तो वही है, शायद आप उससे फल पाने की विधि नहीं जानते हैं। अविधि से साधा हुआ मन्त्र अनिष्टकर होता है। अविधि से उठाया हुआ शस्त्र घातक होता है। आपने भी विधि का ज्ञान नहीं किया, इसीलिए यह परिणाम आया है। चलिए, मैं आपके साथ चलता हूं और फल पाने की सही विधि बताता हूं।

राजपुरुष भी यह बात सुनकर शान्त हो गए। वे उसे ससम्मान साथ लेकर राजा के पास पहुंचे। वहां व्यापारी ने गाय से दूध प्राप्त करने की पूरी प्रक्रिया राजा के कर्मकरों को सिखा दी। अब राजा को गाय का दूध और उससे बने विविध पदार्थ यथेष्ट रूप में प्राप्त होने लगे।

छोटी-सी वस्तु की प्राप्ति भी सही विधि बिना नहीं हो सकती, तब धर्म और अध्यात्म के रहस्य सही विधि के अभाव में कैसे ज्ञात हो सकते हैं!

उपेक्षा का दुष्परिणाम

किसी जंगल में एक अथाह जल वाला सरोवर था। वह कमलों से सुशोभित था और वनखण्ड से अभिमंडित था। उस वनखण्ड में अनेक प्रकार के फल-फूलों से लदे हुए विविध प्रकार के वृक्ष थे। सघन वृक्षों की छाया और पके हुए मधुर फलों ने अनेक पशु-पक्षियों को अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। वह सरोवर भी अनेक जल-जन्तुओं से भरा हुआ था। उस अरण्य में हाथियों का एक वहुत वड़ा यूथ रहता था। पशु-पक्षियों में किसी प्रकार का मतभेद नहीं था, इसलिए वहां शान्ति का अखण्ड साम्राज्य था।

एक वार ग्रीष्म ऋतु में हाथियों का यूथ सरोवर में पानी पीने आया। मध्याह्न तक वह यूथ सरोवर के जल में क्रीड़ा करता रहा। उसके वाद वह विश्राम के लिए वनखण्ड के वृक्षों की शीतल छाया में सुख का अनुभव करता हुआ सो गया।

एक ओर छोटे-वड़े हाथी निश्चिन्तता से सो रहे हैं, दूसरी ओर दो गिरगिटों में झगड़ा छिड़ गया। वे दोनों परस्पर लड़ने लगे। वहुत समय तक उनका कलह शान्त नहीं हुआ, तव वनदेवी ने अरण्यवासी सभी जल-जन्तुओं और पशु-पक्षियों को सम्वोधित कर कहा—आपके सामने दो गिरगिट झगड़ रहे हैं। इन्हें रोको। इनकी उपेक्षा मत करो, अन्यथा विनाश हो जाएगा।

वनदेवी की उद्घोषणा सुनकर एक वार तो सभी जीव-जन्तु स्तव्ध रह गए। फिर उन्होंने सोचा—गिरगिट लड़ रहे हैं, लड़ते रहें। ये हमारा क्या कर लेंगे। यह चिन्तन किसी एक पशु या पक्षी का नहीं था। सभी ने ऐसा सोच लिया। दोनों गिरगिटों का द्वन्द्व-युद्ध पहले से तेज हो गया। दोनों क्रोध में उन्मत्त होकर लड़ रहे थे। आखिर एक गिरगिट थककर पराजित हो गया। पर दूसरे गिरगिट ने उसका पीछा नहीं छोड़ा। वह उससे दुःखी होकर दौड़ा और निश्चिन्तता से लेटे हुए हाथी के नासापुट को विल समझ कर उसमें घुस गया। दूसरे गिरगिट ने पीछा किया। वह भी उस हाथी के नासापुट में घुस गया। हाथी के कुम्भस्थल पर पहुंचकर उन्होंने द्वन्द्व-युद्ध प्रारम्भ कर दिया।

हाथी अचानक नींद से जगा। उसने सिर में खुजलाहट-सी अनुभव की। थोड़ी देर में खुजलाहट इतनी बढ़ी कि वह बेचैन हो गया। कुछ देर वह देखता रहा। पर बेचैनी कम होने के स्थान पर बढ़ती गई। वह पीड़ा से आर्त हो गया। असमाधिस्थ हो गया। व्याकुल हो गया। अब वह स्वयं को काबू में नहीं रख सका। सबसे पहले उसने समूचे वनखण्ड को तहस-नहस कर दिया। वहां रहने वाले पशु-पक्षी चीखने-चिल्लाने लगे। पर हाथी उन सबको कुचलता हुआ सरोवर में घुस गया। पानी में अनियन्त्रित उछल-कूद मचाकर उसने जल-जन्तुओं को समाप्त कर दिया। इतना होने पर भी वह शान्त नहीं हुआ। गुस्से में आकर उसने सरोवर की पाल तोड़ दी। सारा पानी इधर-उधर बह गया। जो जीव बचे थे, वे भी जल के प्रवाह में बह गए। प्रलय जैसा भयावह दृश्य उपस्थित हो गया। वह हाथी स्वयं भी नहीं बच सका।

दो छोटे-छोटे गिरगिटों की लड़ाई में एक पूरा जंगल तहस-नहस हो गया। अनगिन पशु-पक्षियों और जल-जन्तुओं का जीवन समाप्त हो गया। वनदेवी की उस उद्घोषणा पर ध्यान दिया जाता और उनकी लड़ाई को प्रारम्भ में ही रोक दिया जाता तो ऐसा भयावह दृश्य उपस्थित नहीं होता। कलह की उपेक्षा का कितना बड़ा दुष्परिणाम हो सकता है।

प्रदर्शन या पुरुषार्थ

राविया नामक एक मुस्लिम महिला हुई है। वड़े-वड़े फकीर भी उसके आगे झुक जाते थे। हसन नामक एक मुल्ला ने जब राविया की महिमा सुनी तो वह ईर्ष्या से जल उठा। वह नहीं चाहता था कि एक महिला उससे अधिक प्रसिद्धि पाए। एक दिन राविया अपनी भक्त-मण्डली के साथ आ रही थी। हसन भी अपनी शिष्य-मण्डली के साथ उधर से आ रहा था। उसने यह अच्छा अवसर समझा अपनी चामत्कारिक विद्या से राविया को परास्त करने का।

हसन नदी के तट पर खड़ा था। उसने अपना मुसल्ला (एक आसन, जिस पर वैठकर नमाज पढ़ी जाती है) उठाया और नदी की वहती धार में उसे विछाते हुए कहा—आओ राविया, इस पर वैठकर नमाज पढ़ें। उपस्थित जनसमूह चमत्कृत था हसन के इस चमत्कार से। पर राविया को यह समझते देर न लगी कि इसके सिर पर अभिमान का भूत सवार है। यह मुझे पराजित करना चाहता है।

राविया ने विना किसी आधार के हवा में अपना आसन विछाते हुए कहा—हसन साहव, पानी के जीव-जन्तुओं को क्यों तकलीफ दें ! आइए, मुक्त आकाश में वैठकर हम नमाज पढ़ें। वस, अव क्या था ? हसन का अहं चूर-चूर हो गया।

राविया ने हसन की अंतश्चेतना को उद्‌वुद्ध करते हुए कहा—हसन साहव, पानी पर आसन विछाकर आपने नयी वात नहीं की, एक मछली भी ऐसा कर सकती है और हवा में आसन विछाकर मैंने भी कोई वड़ा चमत्कार नहीं किया, एक मक्खी भी ऐसा कर सकती है। हमारा लक्ष्य चमत्कार-प्रदर्शन नहीं है। हमारी साधना तो तव सफल होगी जव हम अपने ही पुरुषार्थ से अपनी आत्मा को जागृत करेंगे।

दृश्य एक : दृष्टियां अनेक

व्रह्ममुहूर्त्त का समय था। शहर के बाहरी भाग में सड़क के किनारे एक व्यक्ति सो रहा था। अनेक व्यक्ति उस मार्ग से गुजर रहे थे और अपनी-अपनी धारणाओं के अनुरूप उसे देख रहे थे। कुछ व्यक्ति एक साथ उधर से आए। उनमें से एक वोला—कौन मुर्दा पड़ा है यहां ? इसके परिवारवालों को पता है या नहीं ?

दूसरे व्यक्ति ने उसकी वात काटते हुए कहा—भाई ! यह मरा हुआ प्रतीत नहीं होता। लगता है कोई पियक्कड़ है और अधिक शराब पीने के कारण वेभान होकर यहां गिर पड़ा है।

तीसरा व्यक्ति वोला—यह कोई निराश चोर होना चाहिए। रात भर चोरी की धुन में घूमता रहा और जव कुछ नहीं मिला तो थककर यहां सो गया।

चौथा व्यक्ति वोला—यह कोई पहुंचा हुआ योगी है; अन्यथा इस खतरों भरे मार्ग पर इतनी निश्चिन्तता से कोई व्यक्ति सो सकता है ? योग-शक्ति से ही ऐसा किया जा सकता है।

पांचवां व्यक्ति वोला—भाई ! मुझे तो यह अपने जैसा ही राहगीर प्रतीत होता है। चलते-चलते थक गया होगा तो सड़क के एक किनारे विश्राम के लिए सो गया।

इस प्रकार जितने व्यक्ति थे, उन सवने अपना भिन्न-भिन्न मन्तव्य प्रस्तुत किया। इससे यह तथ्य प्रमाणित होता है कि एक दृश्य के सम्वन्ध में हर दर्शक का अपना स्वतन्त्र दृष्टिकोण होता है, अतः वह एक ही अनेक रूपों में पहचाना जाने लगता है।

एक में सब कुछ

एक अंधा व्यक्ति किसी तरह लकड़ी के सहारे चलता हुआ अपनी उदर-पूर्ति करता था। एक दिन एक सिद्धपुरुष उसके सामने उपस्थित हुआ और कहने लगा—सूरदास ! मैं सिद्ध-पुरुष हूं। मुंहमांगा वरदान देता हूं। तुम्हारी दयनीय स्थिति पर मुझे दया आ रही है, इसलिए मैं तुम्हें वरदान देने के लिए आया हूं। तुम जो चाहो, वरदान मुझसे मांग सकते हो। पर ध्यान रखना, मैं वरदान एक ही देता हूं, अधिक नहीं।

यह बात सुनते ही अंधे के चेहरे पर चमक आ गई। उसे अपना भविष्य सुनहला प्रतीत होने लगा। जब सोया हुआ भाग्य जग जाता है तो मनुष्य की बुद्धि और पुरुषार्थ सब फलदायी बन जाते हैं।

अंधे ने कहा—महाप्रवर ! जब आप वरदान ही दे रहे हैं तो कम-से-कम दो वर तो दें। एक वर से क्या होगा ? यदि आंखें मांगता हूं तो दरिद्रता के अभाव में केवल आंखें क्या करेंगी और धन मांगता हूं तो अंधे के पास धन छोड़ेगा कौन ? चोर-डाकू-लुटेरे कोई भी ले जाएंगे।

सिद्ध पुरुष ने कहा—कुछ भी हो, मेरा प्रण है, मैं किसी को दो वरदान नहीं देता। अन्धा व्यक्ति दो क्षण चिन्तन की मुद्रा में स्थिर खड़ा रहा। अचानक एक विचार बिजली की भांति उसके मन में कौंधा और चेहरे पर एक अभिनव खुशी की लहर दौड़ गई। तत्काल वह बोला—सिद्धपुरुष ! यदि तुम मुझे वरदान देना चाहते हो तो मुझे यह वरदान दो कि मैं अपने पौत्र को सोने के थाल में खीर-पूरी का भोजन करते हुए अपनी आंखों से देखूं।

सूरदास ने एक वरदान क्या मांगा, सब कुछ मांग लिया। अंधे व्यक्ति के लिए संस्कृत में प्रज्ञाचक्षु शब्द का प्रयोग आता है। उस व्यक्ति ने वास्तव में अपने प्रज्ञाचक्षुस्त्व का परिचय देकर, उसके लिए जो कुछ प्राप्तव्य था, एक वाक्य में पा लिया। सिद्धपुरुष ने कहा—'तथास्तु' और दोनों ने अपना-अपना रास्ता ले लिया।

साधना की योग्यता

चार युवा मित्र एक संन्यासी के पास पहुंचे। संन्यासी के चरणों में प्रणत होकर वे बोले—महाराज ! हमें साधना की पद्धति बताइए। संन्यासी ने कहा—साधना कोई खेल-तमाशा नहीं है, उसके लिए दीर्घकालिक अभ्यास की अपेक्षा है। युवकों ने कहा—हम तैयार हैं, आप हमें पथ बताएं। संन्यासी ने उनकी क्षमता का अंकन करना चाहा और कहा—जब तक मैं न कहूं, इस स्थान से न तुम्हें उठना है, न एक शब्द भी बोलना है। मौन धारण कर चारों बैठ गये। लगभग तीन घंटे व्यतीत हो गये। एक युवक से नहीं रहा गया। उसने कहा—अंधेरा हो रहा है। दूसरा बोला—दीया तो जला ही नहीं, फिर तुम्हें कैसे पता चला कि अंधेरा हो गया ? तीसरा भी चुप नहीं रहा सका। वह बोल पड़ा—तुम दोनों ने मौन भंग कर दी। चौथे ने गर्व के साथ कहा—मौनी तो एक मैं ही हूं।

साधक ने चारों को साधना के लिए अयोग्य ठहरा दिया। इन चारों युवकों में दो थे—प्रमादी और दो थे प्रमाद के साथ परदोषदर्शी। प्रमाद और परदोषदर्शन, दोनों ही साधना के विघ्न हैं। इनके रहते कोई भी व्यक्ति साधना के क्षेत्र में आगे नहीं बढ़ सकता।

नियति का खेल

एक वृद्ध भिखारी अपनी पत्नी और पुत्र के साथ शहर में भीख मांग रहा था। प्रारम्भ से ही भिक्षाजीवी होने के कारण उनके पास न तो रहने के लिए कोई आवास था, न शरीर पर पूरे कपड़े थे और न चेहरे पर खुशहाली की चमक ही थी। तीनों व्यक्ति दिनभर घूम-घूम कर सांझ घिरने तक मुश्किल से पेट भरने का साधन जुटा पाते थे।

एक दिन पौष की ठिठुरती सर्दी में वे तीनों अपने भाग्य को कोसते हुए सामने से गुजरने वाले व्यक्ति के आगे हाथ पसार रहे थे। उनकी इस दयनीय स्थिति पर एक देव का दिल द्रवित हो उठा। उसने उनका दारिद्र्य दूर करने का निर्णय लिया और अपने निर्णय की क्रियान्विति के लिए धरती पर पहुंच गया।

तीनों व्यक्तियों के रास्ते में उस देव ने हीरे-मोतियों के ढेर लगा दिए। वे उन ढेरों के निकट पहुंचे, उससे पहले ही बालक ने अपने पिता को सम्बोधित कर कहा—पिताजी ! अपने परिवार में हम तीन ही सदस्य हैं। तीनों परिश्रम करते हैं, तब हमारा काम चलता है। संयोगवश कभी हम तीनों ही अंधे हो जाएं तो हमारा काम कैसे चलेगा ? कितना अच्छा हो हम पहले से ही ऐसा अभ्यास कर लें कि अन्धे होने की स्थिति में भी हमें किसी कठिनाई का सामना न करना पड़े।

पुत्र का सुझाव उनको पसंद आ गया और वे तीनों आंखों पर पट्टी बांधकर लकड़ी का सहारा लेकर चल पड़े। हीरे-मोतियों के ढेर उनके पांवों के नीचे थे। वे उन्हें रौंदते हुए आगे निकल गए। देव की करुणा उनके कोई काम नहीं आयी। समय पर नियति ने उनके साथ छल किया और वे उसी दारिद्र्य की छाया में अपने जीवन के शेष क्षण व्यतीत करते रहे।

अधूरी विजय

विश्वविजयी बनने का महत्त्वाकांक्षी सम्राट् सिकन्दर महान अपनी विशालकाय सेना के साथ हिन्दुस्तान विजय के लिए निकला। मार्ग में यूनान का महान् संत डायोजनीज खड़ा था।

संत ने पूछ लिया—सम्राट्, कहां जा रहे हो? अभिमान से मस्तक ऊंचा किए सम्राट् का उत्तर था—हिन्दुस्तान-विजय के लिए।

'हिन्दुस्तान-विजय के बाद क्या करोगे?' 'एशिया-विजय के लिए प्रस्थान करूंगा'—उसी गर्व के साथ सम्राट् ने उत्तर दिया।

संत का प्रश्न ज्यों का त्यों खड़ा था। फिर पूछा—एशिया-विजय के बाद क्या करना है तुम्हें? विजय के उन्माद में उन्मत्त बना सिकन्दर यथार्थ को कैसे पहचान सकता था। सहसा उसने कहा—एशिया-विजय के बाद विश्व-विजय का प्रयत्न करूंगा।

विश्व-विजय के बाद क्या करोगे? इस अवशिष्ट प्रश्न को भी सन्त ने प्रस्तुत कर दिया।

सम्राट् इस प्रश्न पर मौन था क्योंकि विश्व-विजय के बाद कुछ भी जीतना अवशेष नहीं रह जाता। 'फिर भी कुछ तो करोगे?' 'तब मैं आराम करूंगा।' सम्राट् ने कहा।

संत ने सम्राट् की ज्ञान-चेतना को जागृत करते हुए कहा—सिकन्दर! तुम्हें शांति और आराम ही तो चाहिए। इसके लिए इतनी दौड़-धूप की क्या अपेक्षा है? अब भी तुम अपने महल में बैठकर आराम से रह सकते हो। तुम्हारे मन में जिस विजय की भूख है वह बाहरी विजय है। यह बाहरी विजय अधूरी विजय है। इस विजय को पाने वाला विजेता नहीं होता। विजेता वह होता है जो अपनी वृत्तियों पर विजय पा लेता है। वासनाओं और कषायों पर विजय पा लेता है। संत की बात सुनकर सम्राट् स्तब्ध हो गया। फिर भी वह अपने विश्व-वि संकल्प को पूरा किए बिना न रह सका। बाहरी विजय अधूरी विजय है हुआ सम्राट् को अपनी मृत्यु के समय, जब वह अपने साथ कुछ भी समर्थ नहीं हुआ।

अहम् किसका ?

एक दिन शिवाजी अपने मन्त्रियों और सेनापति के साथ अपने नवनिर्मित किले को देखने गए। उन्होंने देखा—हजारों व्यक्ति किले में काम कर रहे हैं। शिवाजी का अहम् जागृत हो गया। सोचने लगे—मैं कितना महान् हूं। मेरे सहारे हजारों व्यक्ति अपनी आजीविका चला रहे हैं।

स्वामी रामदास (शिवाजी के गुरु) साथ ही थे। उन्होंने अपने प्रज्ञाबल से यह जाना कि शिवाजी के सिर पर अहम् का भूत सवार हो गया है। अहम् सब बुराइयों की जड़ है। इसलिए मुझे शिवा को प्रतिबुद्ध करना चाहिए।

मार्ग में पड़ी हुई एक शिला को देखकर स्वामी रामदास ने कहा—यह शिला बीच में किसने रख दी, हटाओ इसे ! आदेश की देर थी, शिला हटा दी गई। ज्यों ही शिला हटी, उसके नीचे पानी निकला। उस पानी में एक मेंढक टर्र-टर्र कर रहा था।

स्वामी रामदास ने शिष्य के ज्ञानचक्षु उद्घाटित करते हुए कहा—क्यों शिवा ! इस मेंढक को पानी तुम्हीं पिलाते हो न ? शिवाजी समझ गए अपने ऊपर किए जाने वाले इस प्रतिबोधक व्यंग्य को। वे तत्क्षण गुरु के चरणों में झुक गए और अपने अपराध की क्षमा मांगकर भविष्य में वैसी भूल न करने का संकल्प स्वीकार किया।

हाबू खा जाएगा

बच्चों ने शैतानी की। मां ने उनको समझाया, पर वे नहीं माने। मां ने डांटा, किन्तु उन पर असर नहीं हुआ। बच्चों की शैतानी से हैरान होकर वह उन्हें तलघर में ले गई। तलघर खोला गया। सीलन, बदबू और घोर अंधकार देख बच्चे थोड़े सकपकाए। मां ने उन्हें अन्दर धकेलने का अभिनय करते हुए कहा—जाओ तलघर में और भोगो अपनी करणी का फल। तलघर में एक हाबू रहता है। वह तुम्हें खा जाएगा, तब तुम्हारी शैतानी दूर होगी।

बच्चे संवेदनशील थे। उनके मन में हाबू की कृत्रिम विभीषिका घर कर गई। हाबू से डरकर उन्होंने शैतानी न करने का संकल्प व्यक्त किया। बच्चे तो वे थे ही। एक-दो बार फिर ऐसा ही प्रसंग आया और मां ने हाबू का भय दिखाकर उनको शैतानी करने से रोका।

बच्चों ने न कभी हाबू देखा और न कभी उसके सम्बन्ध में कोई कल्पना ही की। फिर भी एक अज्ञात भय उनके मन में गहरा होता जा रहा था। अब वे किसी भी अंधेरे स्थान में जाते समय घबराने लगे।

बच्चे बड़े हुए। उनके मन का भय भी बड़ा होता गया। एक दिन उनकी मां ने कहा—बच्चो! तलघर खोलकर अमुक चीज ले आओ। बच्चे एक-दूसरे का मुंह ताकने लगे, पर वहां जाने के लिए तैयार नहीं हुए। मां ने दूसरी और तीसरी बार कहा, पर बच्चों के कदम नहीं उठे तो वह झल्लाकर बोली—तुम सबको आज हो क्या गया है? घर का कोई काम नहीं करते हो, मैं अकेली क्या-क्या कर सकूंगी?

बच्चे सहमते हुए बोले—मां, हम तुम्हारा सब काम कर देंगे, पर तलघर में नहीं जायेंगे। वहां जो हाबू रहता है, वह हमें खा जाएगा।

धोखेबाज कुत्ता

गांव के वाहर रंगरेजों के कई परिवार रहते थे। वस्त्र रंगने के लिए उन्होंने जमीन में रंग की कई कुंडें वनवा लीं। उनमें नीला, हरा, पीला, लाल, वैंगनी आदि रंगों का घोल भर लिया। एक दिन एक घने गहरे वालों वाला कुत्ता नीले रंग की कुंड में गिर पड़ा। जव वह वाहर निकला तो उस पर गहरा नीला रंगा चढ़ गया। अव वह एक विचित्र जानवर-सा प्रतीत होने लगा। अपने वैचित्र्य को लाभ उठाने के लिए वह जंगल में जाकर एक ऊंचे टीले पर वैठ गया।

थोड़ी देर में वहां कुछ पशु इकट्ठे हो गए। उस विचित्र जानवर को देख वे उसके पास पहुंचे और उसका परिचय पूछा। कुत्ते ने कहा—तुम मुझे भी नहीं जानते। मैं इस जंगल का पशु हूं, और वनराज ने मुझे इसका स्वामित्व सौंपा है। पशुओं द्वारा नाम पूछे जाने पर उसने वताया—मेरा नाम है कुक्कड़धम्म।

पशुओं ने कुक्कड़धम्म को एक शक्तिशाली पशु माना और वे उसकी सेवा में जुट गए। सहसा गांव के वाहर कुत्तों के भौंकने की आवाज सुनाई दी। कुक्कड़-धम्म से रहा नहीं गया, वह भी उनके साथ भौंकने लगा। भौंकते ही पशुओं क उसका भेद मिल गया। सवने मिलकर उस पर आक्रमण कर मार डाला।

धोखा दिया जा सकता है, पर वह अधिक समय तक टिक नहीं सकता।

आकाश टूट पड़ा

दोपहर का समय था। धूप तेज थी। एक खरगोश अखरोट के वृक्ष के नीचे सो रहा था। ठण्डी हवा चली और उसे नींद आ गई। हवा के झोंके से एक अखरोट टूटा और खरगोश पर गिर पड़ा। वह अचानक नींद से जागा और दौड़ा। मार्ग में उसे एक लोमड़ी मिली। उसने पूछा—खरगोश भैया ! आज कहां दौड़े जा रहे हो ? क्या किसी दावत में आमंत्रण मिला है ?

खरगोश घबराया हुआ-सा बोला—मौसी ! तुझे दावत सूझ रही है, और मेरी जान पर आ बनी है। क्या तुझे पता नहीं है आज आसमान टूट पड़ा है ? लोमड़ी ने यह बात सुनी तो वह भी उसके साथ दौड़ने लगी।

रास्ते में गीदड़ मिला, भालू मिला, और भी कई पशु मिले। सबने दौड़ने का कारण पूछा और दौड़ने वालों ने आकाश टूटकर गिरने की बात कही। न कोई कारण और न कोई परिणाम, फिर भी सबके मुंह से एक ही बात—'आकाश टूट पड़ा है, आकाश टूट पड़ा है।' जंगल का पूरा वातावरण भयाक्रान्त हो गया। चारों ओर पशुओं की भय-मिश्रित आवाज और भगदड़। किसी ने भी यह पूछने का साहस नहीं किया कि आकाश कहां पड़ा, कैसे पड़ा और उससे क्या हुआ ? स्थिति यहां तक बनी कि जंगल का राजा भी उस अफवाह से प्रभावित हो गया।

मुझे दूध चाहिए

गुजरात की घटना है। वहां एक व्यक्ति ने नौकर रखा। नाम था उसका 'अमथा'। अमथा ढीला-ढाला व्यक्ति था, फिर भी जैसे-तैसे अपना काम कर लेता था। एक दिन उस घर में मेहमान आए। मालिक ने नौकर से दूध लाने के लिए कहा। नौकर तत्परता से चला। वह आधी दूर पहुंचा होगा कि पुनः लौट आया और बोला—दूध काली गाय का लाना है या चितकबरी का? गृहस्वामी ने उत्तर दिया—किसी भी गाय का ले आओ। वह चला और थोड़ी दूर जाकर फिर आ गया। इस समय उसका प्रश्न था—दूध बाखड़ी गाय का लाना है या सावड़ी (सद्यःप्रसूता) का? मालिक थोड़ा झुंझलाया और बोला—तुम्हें पहले से कह दिया—किसी भी गाय का ले आओ। नौकर आश्वस्त होकर चला, पर एक और जिज्ञासा ने उसको मालिक के सामने लाकर खड़ा कर दिया। उसने प्रश्न किया—अपने यहां एक गाय खोड़ी है और एक साझी है, कौन-सी गाय के दूध की जरूरत है?

मालिक अपने नौकर की इस वृत्ति से थोड़ा उत्तेजित हुआ। वह उसे कड़ी चेतावनी देते हुए बोला—यह प्रश्नों का सिलसिला बन्द करो और दूध ले आओ। मुझे दूध से मतलब है, न कि गाय से। अमथा सहमता हुआ-सा गया और कौन-सी गाय का चिन्तन छोड़कर दूध का पात्र ले आया।

धर्मे जय पापे क्षय

एक वृद्ध ब्राह्मण प्रतिदिन सभा में जाता। राजा को आशीर्वाद देकर [illegible]—
'धर्मे जय पापे क्षय'। महीनों से यह क्रम चल रहा था, पर राजा ने [illegible]
ओर ध्यान नहीं दिया। एक दिन राजा की दृष्टि ब्राह्मण पर पड़ी। [illegible]
बुलाकर राजा ने उससे बातचीत की। राजपुरोहित दूर बैठा देख रहा था। [illegible]
मेरा पद छीनकर इसे न दे दे, इस संदेह ने राजपुरोहित को व्यथित कर दिया।
वह ब्राह्मण से मिला और बोला—महाराज से तुम्हारी क्या बात हुई? [illegible]
कहा—मैं गरीब आदमी हूं, मैं कुछ जानता नहीं। राजपुरोहित बोला—[illegible]
राजा से बात करने का तरीका यह नहीं है। कहीं मुंह से थूक उछल गया तो [illegible]
दंड मिलेगा, इसलिए तुम अपने मुंह पर एक कपड़ा बांधकर आया करो।

ब्राह्मण से निपटकर राजा के पास पहुंचा और बोला—महाराज, [illegible]
बात करते हैं! वह जाति बहिष्कृत है। ब्रह्मभोज से अलग है। [illegible]
और न जाने क्या-क्या करता है। आपको अपने पद की गरिमा का ध्यान [illegible]
चाहिए।

राजा ने कहा—मुझे तो ब्राह्मण शरीफ ही लगा। वह शराब पीता है, [illegible]
तुम्हारे पास क्या प्रमाण है? पुरोहित बोला—महाराज! ध्यान रखना [illegible]
शराब पीकर आयेगा, अपना मुंह बांधकर आएगा।

दूसरे दिन राजा ने देखा—ब्राह्मण आज अपना मुंह बांधकर आया है। [illegible]
को पुरोहित के कथन में सत्यता का आभास हुआ। उसने एक रुक्का [illegible]
ब्राह्मण को दिया और कहा—भंडारी के पास चले जाओ।

ब्राह्मण खुश होकर चला। रास्ते में पुरोहित मिला। ब्राह्मण [illegible]
चेहरे को देख पुरोहित ने पूछा—आज तो बड़े खुश नजर आते हो। [illegible]
गया? पुरोहित ने कहा—यह सब आपकी कृपा है [illegible]
और राजा ने रुक्का दे दिया।

पुरोहित ने रुक्का ब्राह्मण के हाथ से छी[illegible]
तो वह बोला—मेरी कला का पुरस्कार [illegible]

मिल जाएंगे, शेष सब-कुछ मेरा है। गरीब ब्राह्मण राजपुरोहित से मुकाबला कैसे कर सकता था? उसने वह रुक्का पुरोहित को पकड़ा दिया।

पुरोहित भंडारी के पास पहुंचा। भंडारी ने रुक्का लेकर पढ़ा। उसमें लिखा था—

रुपया दीज्यो पांच सौ मत दीज्यो सुल्लाख।
घर में आगो घालनै काटी लीज्यो नाक।

पत्र के अनुसार भंडारीजी ने पांच सौ रुपये गिनकर पुरोहित को दे दिए। पुरोहित जाने लगा तो वह बोला—ठहरो, अभी अन्दर आओ। क्यों? पुरोहित द्वारा जिज्ञासा करने पर भंडारी ने कहा—रुक्के में आदेश है, तुम्हारी नाक काटनी है। अब पुरोहित घबराया और बोला—यह रुक्का मेरा नहीं है। उसने बहुत मिन्नतें कीं, पर भंडारी के पास राजा के हाथ का लिखा पत्र था। पांच सौ रुपये जिसे देने थे उसी की नाक काटनी थी। उसने बलपूर्वक पुरोहित की नाक कटवा दी। पुरोहित अपने दुष्कृत से लज्जित हुआ और घर जाकर लेट गया।

दूसरे दिन ब्राह्मण राजा के समक्ष उपस्थित हुआ। राजा ने विस्मित भाव से पूछा—कल तुम्हें रुक्का दिया था, आज फिर क्यों आये? ब्राह्मण दीनता व्यक्त करते हुए बोला—वह तो पुरोहितजी ने ले लिया। राजा का मन संदिग्ध हुआ—उसने सारी हकीकत की जानकारी कर पूछा—तुम शराब पीते हो? क्या तुम ब्रह्मभोज से बहिष्कृत हो? ऐसे प्रश्न सुनकर ब्राह्मण भी असमंजस में पड़ा। उसने कहा—राजन्! शराब पीना तो दूर, मैं शराबी के साथ बैठकर भोजन भी नहीं करता तथा ब्रह्मभोज में सदा सम्मिलित होता रहा हूं। आप मुझ से यह सब क्यों पूछ रहे हैं?

राजा पुरोहित की नीचता से अवगत हुआ। उसने पुरोहित को बुलाया। वह आने की स्थिति में नहीं था, पर उसे आना पड़ा। राजा ने उसकी भर्त्सना कर उसे 'देश-निकाला' दिया तथा उस गरीब ब्राह्मण को पुरोहित के पद पर प्रतिष्ठित किया। ब्राह्मण 'धर्मे जय' और 'पापे क्षय' के अपने सिद्धान्त में गहरा आस्थाशील हो गया।

गुदड़ी में गोरख

गुरु गोरखनाथजी अपने समय के प्रसिद्ध सन्त थे। उनके पास एक शिष्य रहता था, जो विनम्र था पर था बुद्धिहीन। वह अपने गुरु की परिचर्या करता और उनकी कृपादृष्टि पाकर धन्य हो जाता।

गोरखनाथजी ख्याति-प्राप्त विद्वान् थे। उनके पास दूर-दूर के पंडित तत्त्व-चर्चा के लिए आते। उनके आवास-स्थल में सदा ज्ञान की गंगा बहती रहती। शिष्य बराबर तत्त्व-चर्चा में सम्मिलित होता और अपने गुरु की विद्वत्ता का दर्शन कर आत्म-विभोर हो जाता।

एक दिन शिष्य ने गोरखनाथजी को प्रणाम कर कहा—गुरुदेव ! आपकी मंगलमय छत्रछाया में मैं निश्चिन्त हूं। आपका प्रभाव सब वर्ग के लोगों पर है। एक बार जो व्यक्ति यहां पहुंच जाता है, वह आपके प्रति समर्पित हो जाता है। आप अपने भक्तों के प्रश्नों का उत्तर देते हैं, समस्या का समाधान देते हैं और देते हैं तत्त्वज्ञान का पोष। आपके वर्चस्व से यह आश्रम भी प्रसिद्ध हो गया है। मेरी भावना है कि मैं सदा-सदा आपके चरणों की उपासना करता रहूं। मेरी इस भावना को सफल करने वाले आप ही हैं। यदि आपने ऐसा नहीं किया तो मेरी गति क्या होगी ?

अपने शिष्य की व्यथा सुनकर गोरखनाथजी बोले—जन्म और मृत्यु संसार का निश्चित क्रम है। इसे कोई टाल नहीं सकता। मेरे बाद भी अपना यह आश्रम पंडितों का केन्द्र बना रहे, इस दृष्टि से मैं तुझे एक महत्त्वपूर्ण 'गुदड़ी' दे रहा हूं। जब भी तेरे सामने जटिल प्रश्न आये, तुम इसको झड़का लेना, प्रश्न का उत्तर मिल जाएगा।

गोरखनाथजी दिवंगत हुए। विद्वानों ने आश्रम में आना-जाना बन्द कर दिया, क्योंकि शिष्य की अज्ञता से वे भलीभांति परिचित थे। कुछ व्यक्ति उसके प्रति सहानुभूति प्रकट करने गये। प्रसंगवश तत्त्व-चर्चा भी चली। शिष्य ने अपनी गुदड़ी को झड़काया और प्रत्येक प्रश्न को गंभीरता से समाहित कर दिया। आगन्तुक लोगों को आश्चर्य हुआ। उन्होंने बाजार में इसकी चर्चा की।

उत्सुकता के साथ वहां गए। शिष्य ने उनको सम्मान दिया।

विद्वानों ने उस दिन कुछ नये प्रश्न उपस्थित किए। शिष्य ने 'गुदड़ी' के सहारे प्रत्येक प्रश्न का सही-सही उत्तर दे दिया। श्रोताओं ने अनुभव किया—स्वयं गोरखनाथजी ही उनके प्रश्नों को समाहित कर रहे हैं। वे लोग सन्तुष्ट होकर वहां से उठे और जाते-जाते बोले—हम तो सोचते थे गुरुजी का शिष्य क्या जानता है? पर यहां तो गुदड़ी में गोरख पैदा हो गया। यह बात गांव-गांव में प्रसिद्ध हुई और गोरखनाथजी का वह भोला-भाला शिष्य 'गुदड़ी वाला गोरख' नाम से पहचाना जाने लगा।

प्रमाद का परिणाम

एक ब्राह्मण देह-चिंता से निवृत्त होकर नदी के तट पर आकर बैठा। लोटा साफ करने के लिए उसे मिट्टी काम में लेनी थी। तट की मिट्टी को खोदते समय उसके हाथ में कुछ कंकड़ आए। एक कंकड़ काफी चमकीला और आकर्षक था। उसको ब्राह्मण ने अपनी जेब में डाल लिया।

अब वह तट पर बैठा है। ठंडी हवा चल रही है। चारों ओर चहल-पहल है। सहसा ब्राह्मण ने सोचा—इतना अच्छा वातावरण इस स्थान को छोड़कर कहां मिल सकता है? घर जाने की इच्छा ही नहीं होती। पर करूं भी क्या? पेट भूखा है। क्या ही अच्छा हो यहां खीर-पूरी का भोजन मिल जाए। बस सोचने भर की देर थी कि खीर और पूरियों से सजा थाल सामने आ गया। ब्राह्मण आश्चर्य में खो गया। मनोनुकूल समय पाकर उसने चिंतन में समय लगाना उचित नहीं समझा। भरपेट भोजन किया। ऐसी स्वादिष्ट खीर उसने पहले कभी नहीं खायी थी।

खाने के बाद आलस्य सताने लगा। सोने की इच्छा हुई और पलंग तैयार। प्रातःकाल की ठंडी हवा अब तेज धूप में परिणत हो गई। ब्राह्मण को भी धूप सताने लगी। उसने मकान का संकल्प किया। दूसरे ही क्षण आधुनिक साज-सज्जा से युक्त मकान तैयार। ब्राह्मण ने जो कुछ सोचा, वही उसके सामने उपस्थित। एक ओर विस्मय, दूसरी ओर भगवान् की कृपा का आभास। अब वह निश्चिन्त होकर सो रहा है।

ब्राह्मण की पलकें मुंदीं कि सामने एक कौवा आकर बैठ गया और कांव-कांव करने लगा। उसने कौवे को उड़ाने का प्रयास किया, पर वह उड़ा नहीं। मेरे भाग्य के साथ टक्कर लेने यह कहां से आ धमका? इस चिंतन के साथ उसने जेब में हाथ डाला और वह कंकड़ निकालकर फेंक दिया। कौवा उड़ा और उसके साथ ही उस समूचे ऐश्वर्य का लोप हो गया। इन्द्रजाल या स्वप्न माया की तरह अपने वास्तविक ऐश्वर्य को खोकर वह ठगा-सा रह गया।

वह सारा ऐश्वर्य चिंतामणि रत्न के द्वारा उपलब्ध था, रत्न गया और ऐश्वर्य समाप्त। प्रमादी व्यक्ति अच्छी से अच्छी वस्तु को प्रमाद में खो देता है।

नजर में दौलत

वादशाह का एक सेवा-निवृत्त वजीर आर्थिक तंगी के दौर से गुजर रहा था। अपने कार्यकाल में वह दूसरे लोगों को आर्थिक सहयोग दिया करता था। पर अव आय के स्रोत वन्द हो जाने के कारण वह स्वयं काफी कठिनाई से काम चला रहा था। इस स्थिति में भी उसने अपने स्वाभिमान को सुरक्षित रखने के लिए किसी के सामने हाथ नहीं फैलाया।

वजीर के पास केवल वह पोशाक वची, जिसे पहनकर वह राजसभा में जाता था। उसको वह अव भी इसी काम में लेता था। घर की स्थिति अत्यन्त नाजुक थी। इसलिए वह सव काम हाथ से करने लगा। आटा पीसने की चक्की तक उसने चलाई, पर अपनी गरीवी को प्रकट नहीं होने दिया।

एक दिन वादशाह वजीर के घर के आगे से गुजरे। वजीर को इस वात का पता नहीं था। वह अपने घर में चक्की पीस रहा था। वादशाह ने पूछा—'यहां वजीर रहता था न?' 'हां, जहांपनाह!' एक अफसर ने उत्तर दिया। वादशाह ने अपनी सवारी रोकी और उस तरफ दृष्टिक्षेप किया। वजीर और वादशाह की आंखें मिलीं। वजीर की पलकें झुक गईं। वादशाह ने हाथ से संकेत कर पूछा—'यह क्या कर रहे हो?' वजीर समझदार था, उसने पेट पर हाथ रखकर वादशाह को समझा दिया कि पेट पापी है, इसके लिए सव-कुछ करना पड़ता है। वादशाह समझ गया।

वादशाह के साथ वड़े-वड़े मंत्री और अफसर थे। वे रहस्य को नहीं समझ पाए अतः अपने प्रति संदिग्ध हो गए। हमारे किसी गलत काम के वारे में वजीर वादशाह को जानकारी न दे दे, इस भय से वे वजीर के पास पहुंचे और वोले—वजीर साहव! आज आपकी वादशाह के साथ क्या वात हुई? वजीर वोला—सव वातें वताने की नहीं होतीं।

मंत्री—हमारे सम्वन्ध में तो कोई वात नहीं हुई?

वजीर—नहीं क्यों? आप सवके काले-कारनामे मेरे ध्यान में हैं। इस प्रकार राज्य का अहित करना उचित नहीं है।

मंत्री—आपने बादशाह से क्या कहा ?

वजीर—मैंने कहा कि सब बातें मेरे पेट में हैं। मंत्री घबराए। अब वे बार-बार वजीर के घर पहुंचते और कहते—वजीर साहब ! आप सब-कुछ जानते ही हैं, हम तो नये-नये हैं। हमारी शान रखना आपके हाथ में है। इस मौखिक आवेदन के साथ वे भेंट भी लाने लगे। पांच, दस, बीस हजार रुपयों की बड़ी-बड़ी रकमें वजीर के चरणों में चढ़ने लगीं। वजीर ने अवसर का लाभ उठाया और उन सबको आश्वस्त कर दिया।

आर्थिक सन्तुलन बन जाने के बाद वजीर के रहन-सहन का स्तर उन्नत हो गया। अब वह एक दिन राजसभा में बादशाह के पास गया। बादशाह ने वजीर से पूछा—बोलो, क्या स्थिति है ? मंत्रियों का कलेजा बैठने लगा। उन्हें भय था कि वजीर उनके सम्बन्ध में कुछ न कह दे। वजीर बोला—जहांपनाह ! सब ठीक-ठाक है। मंत्री लोग आश्वस्त होकर कनखियों से एक-दूसरे को देखने लगे।

वजीर बादशाह के निकट पहुंचा और सारी स्थिति की जानकारी देकर बोला—

"बहुत दिनों से कसीला आया पर हमने किनसे न जताया।
चक्की पीस कर रखी शान, नजरे दौलत महरबान ॥"

महान् व्यक्तियों की नजर में ही दौलत है। उनकी नजर जहां टिक जाती है, वहां हर असम्भव कार्य सम्भव हो जाता है।

जामाता का कौशल

श्रेष्ठी की इकलौती पुत्री लाड़-दुलार में पलकर उच्छृङ्खल हो गई। किसी का नियंत्रण उसे सही मार्ग पर नहीं ला सका। उसके दुष्ट स्वभाव की सूचना दूर-दूर तक फैल गई। लड़की शादी के योग्य हुई, पर कोई उसके साथ सम्बन्ध करने के लिए तैयार नहीं हुआ।

एक विधुर व्यक्ति शादी करना चाहता था। उसने सुना लड़की वयस्क है, पढ़ी-लिखी है, रूपवती है और सम्पन्न पिता की पुत्री है, किन्तु प्रकृति अच्छी नहीं है। वह उसके साथ शादी करने के लिए तैयार हो गया। मित्रों ने समझाया—जान-बूझकर कर्कशा स्त्री के साथ क्यों बंध रहे हो? वह बोला—मैं इसे ठीक कर लूंगा।

शुभ मुहूर्त्त में विवाह संस्कार सम्पन्न हुआ। विदा होने से पूर्व जामाता ने अपने ससुर से कहा—मिट्टी के बर्तनों से भरी एक गाड़ी हमारे रथ से आगे-आगे चलेगी। ससुरजी को आश्चर्य हुआ, पर नये जामाता के निर्देश की क्रियान्विति आवश्यक समझकर उन्होंने वैसी व्यवस्था कर दी।

वर-वधू रथ में बैठे हैं और आगे मिट्टी के बर्तन खड़खड़ा रहे हैं। वर ने गाड़ीवान को सम्बोधित कर कहा—अपने इन बर्तनों को समझा दो, यह खड़बड़ाहट मुझे अच्छी नहीं लगती। गाड़ीवान ने बर्तनों को व्यवस्थित रखकर बांध दिया। थोड़ी दूर गाड़ी चली और बर्तनों में फिर खड़बड़ शुरू हो गई। वर बोला—गाड़ीवान! तुम अपने बर्तनों को मौन करवा दो अन्यथा मुझ जैसा बुरा कोई नहीं होगा। गाड़ीवान ने विनम्रता से कहा—जंवाई बाबू! इनको कैसे समझाऊं?

जामाता हाथ में डंडा लेकर उठा और बोला—देखता हूं साले मानते हैं या नहीं? मेरे सामने कोई आदमी भी खड़बड़ करे तो मैं उसका सिर फोड़ देता हूं। इनकी क्या मजाल, जो अपनी खड़बड़ाहट नहीं छोड़ते! इन शब्दों को दोहराता हुआ वह गाड़ी पर चढ़ा और डंडे के प्रहार से सब बर्तनों को तोड़कर ढेर कर दिया।

लड़की ने यह सब देखा और उसकी अक्ल ठिकाने आ गई। घर पहुंचकर उसके पति ने कहा—देखो, यह घर तुम्हारा है। सुख से रहो और घर को संभालो। तुम्हें कोई रोकने-टोकने वाला नहीं है। पर एक वात का ध्यान रखना। मेरी प्रकृति वहुत बुरी है। यदि तुमने ऐसा-वैसा कुछ कर दिया तो फिर खैरियत नहीं है। अन्य सब वातों के साथ उसने यह भी कहा—अपने घर में कोई अतिथि आए तो उसको पूरा आतिथ्य दो, पर उसको घी या तेल मुझे पूछकर परोसना। वधू बोली—अतिथि के सामने मैं आपसे कैसे पूछूंगी? पति ने परामर्श दिया—यदि मैं वायीं आंख से संकेत करूं तो तेल परोसना और दायीं से करूं तो घी। पत्नी ने अपने पति के हर संकेत और निर्देश को सही रूप में समझा और क्रियान्वित किया। उनका घर एक प्रकार से स्वर्ग वन गया।

कुछ समय पश्चात् लड़की का पिता अपनी पुत्री के हालात जानने के लिए आया। पति ने सोचा—आज पिताजी को दिखाना है कि मैंने उनकी पुत्री को कैसे पढ़ा लिया है! लड़की ने अपने पिता के लिए खिचड़ी तैयार की। भोजन परोसने से पहले उसने पति की ओर देखा। पति ने वायीं आंख का संकेत किया। लड़की का कलेजा वैठ गया। पिताजी को तेल परोसे यह उसे उचित नहीं लगा। पति की इच्छा के विरुद्ध घी परोस दे तो मिट्टी के बर्तनों जैसी हालत उसकी हो जाए।

आज्ञा का अतिक्रमण करने से तो पूछ लेना अच्छा है, यह सोच वह धीरे से वोली—'वावै स्यूं पिण डाई?' पिता पास में वैठा था। उसने अपने जामाता की ओर देखा। दोनों रहस्य समझ गये। जामाता ने दायीं आंख से संकेत कर ससुरजी को घी-खिचड़ी का भोजन करवाया। श्रेष्ठी अपने जामाता के बुद्धि-कौशल से वहुत प्रभावित हुआ।

वणिक् का चातुर्य

एक वणिक् बहुत लोभी था। वह जीवन भर मोह-माया के चक्कर में रहा। उसने न कभी सत्संग किया और न धर्माचरण। जैसे-तैसे अर्थार्जन और उसकी सुरक्षा में उसने अपना जीवन पूरा किया। आयुष्य की पूर्णता पर यमराज ने उसको धर्मराज के सामने उपस्थित किया। धर्मराज ने उसके पिछले जीवन से सम्बन्धित बही-खाते देखे। वहां धर्म के कोष्ठकों में शून्य अंकित थे। धर्मराज ने उसको लोभ, मोह, धोखाधड़ी आदि दुष्प्रवृत्तियों का फल भोगने के लिए यातना-पूर्ण स्थान (नरक) में ले जाने का आदेश दिया। यह आदेश सुनते ही वणिक् कांप उठा। वह नारकीय यातना से बचने का उपाय सोचने लगा।

उसने देखा—उसके नाम का खाता पास में पड़ा है। उसमें जीवन के समग्र लेखे-जोखे के बाद लिखा हुआ है—'आयुः गतम्'। यह पढ़ते ही उसकी आंखों में चमक आ गई। उसने सोचा—गतम् में एक फांकड़ी फंसाकर मैं अपना काम बना सकता हूं। इस चिन्तन के साथ ही उसने धर्मराज की आंख बचाकर डोट पैन जैसे किसी साधन से गकार के नीचे एक छोटी-सी रेखा खींच दी। 'गतम्' 'शतम्' में बदल गया।

अब वह धर्मराज को सम्बोधित कर बोला—आप तो न्यायप्रिय हैं, आपके सामने भी इतनी पोल? क्या आपके कर्मकर अनपढ़ हैं? कृपा कर आप मेरे खाते की जांच कीजिये। मैं इतने समय तक परिवार की व्यवस्था में व्यस्त रहा अब मुझे निश्चिन्त होकर धर्माराधना में प्रवृत्त होना था। धर्म करने का समय आया तो मुझे वहां से उठा लिया गया। क्या मेरा आयुष्य पूरा हो गया है?

कहा जाता है—धर्मराज ने खाता देखा। 'आयुः शतम्' देखकर उसने अपने दूतों को उपालम्भ दिया और उस वणिक् को पुनः धरती पर जाने के लिए मुक्त कर दिया। धर्मराज के राज्य में एक फांकड़ी फंसाकर वणिक् अपने बुद्धिबल से एक बार तो नारकीय यातना से मुक्त हो गया।

पद का प्रभाव

पुत्र-सुख से वंचित एक राजा का अचानक स्वर्गवास हो गया। उत्तराधिकार के प्रश्न पर समस्या खड़ी होने लगी। समाधान की दिशा में उस समय प्रचलित परम्परा का प्रयोग हुआ। राजपरिवार में पालित बुलबुल को उड़ा दिया गया। वह उड़ती हुई जिस व्यक्ति पर जाकर बैठेगी वही राजा बनेगा। इस निश्चय के साथ कुछ राजपुरुष बुलबुल की गति का पीछा करने लगे।

बुलबुल उड़ती हुई जंगल में गई और एक घसकटे (घास बेचकर जीविका निर्वाह करने वाला) के सिर पर जाकर बैठ गई। राजपुरुषों ने उस व्यक्ति को घेर लिया। वह बेचारा घबराकर बोला—मुझे क्यों पकड़ते हो? मैं अपने खेत की घास काटकर भारा लाया हूं, किसी दूसरे का नहीं। मैंने कोई अपराध नहीं किया है। राजपुरुषों ने बड़ी मुश्किल से उसको समझाकर राजा बनाने की बात बताई।

घसकटा खुश होकर राजमहल में पहुंचा। वहां उसे नहला-धुलाकर राजसी वस्त्र पहनाए गए। राज्याभिषेक समारोह में उसे ऊंचे सिंहासन पर बिठाया गया। विधिवत् सारा काम सम्पन्न हुआ। सिंहासन से उतरते समय उसने अगल-बगल खड़े दोनों मंत्रियों के कंधों का सहारा लिया। राजा के इस व्यवहार पर मंत्रियों को हंसी आ गई। कल तक तो घंटों घास काटता और सिर पर बोझ ढोता, फिर भी थकान नहीं आती। आज बैठा-बैठा थक गया, इसलिए सहारे की जरूरत पड़ रही है। मंत्रियों की हंसी के पीछे यह पृष्ठभूमि थी। राजा ने देखा और समझा, पर कहा कुछ नहीं।

थोड़ी देर बाद उसने दोनों मंत्रियों को बुलाकर पूछा—उस समय आप हंस क्यों रहे थे? यह प्रश्न सुन मंत्री स्तब्ध रह गए। वे बोले—नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है। राजा ने कठोर होकर कहा—मुझे सच-सच बता दो। मंत्री घबराए और अपनी हंसी का कारण बता दिया। राजा ने उनको लक्षित कर कहा—आप लोग वर्षों से मंत्री हैं, पर अभी तक चिन्तन का स्तर कितना छिछला है। क्या आप यह सोचते हैं कि मैं बैठा-बैठा थक गया? मंत्रियों ने अपनी भूल स्वीकार की। उनकी प्रश्नायित आंखों में झांकता हुआ राजा बोला—सचिवो! मैं बिलकुल नया हूं

राज्य-संचालन का मेरा कोई अनुभव नहीं है। इस स्थिति में मेरे कार्य की सफलता आप लोगों की मंत्रणा पर निर्भर करती है। मेरे मंत्रियों के कंधे कितने मजबूत हैं, इसकी थाह पाने के लिए मैंने आपका सहारा लिया था।

मंत्री अपने राजा के उक्त तर्क को सुनकर अवाक् हो गए। कल तक जिसे ठीक से बात करनी नहीं आती थी आज वह इतना वाक्पटु बन गया। उनके मुंह से सहसा बोल फूट पड़े—यह सब गादी का प्रभाव है।

जैसे को तैसा

प्राचीन समय की बात है, एक ब्राह्मण-पुत्र बारह वर्ष तक काशी में विद्याभ्यास कर अपने घर लौट रहा था। मार्ग में एक गांव से गुजरते समय वह कुएं के पास ठहरा, बैल को पानी पिलाकर वह विश्राम-हेतु एक वृक्ष के नीचे बैठा। वहां कुछ ग्रामीण व्यक्ति पहले से ही बैठे थे। नवागन्तुक के पांडित्य का परिचय पाकर वे बोले—हमारे गांव में भी एक पंडित रहता है, आप उसके साथ शास्त्रार्थ करें। ब्राह्मण-पुत्र ने आनाकानी की तो वे कहने लगे—शास्त्रार्थ किए बिना पांडित्य का परीक्षण क्या होगा? गांववासियों के उकसाने से न चाहने पर भी उसने शास्त्रार्थ के लिए स्वीकृति दे दी।

ग्राम से पंडित को बुलाया गया। वह था तो मूर्ख-भट्टारक पर ऊलजलूल बातें बताकर पंडित बन बैठा। उसने आते ही कहा—शास्त्रार्थ करना है, बोलो मध्यस्थ कौन है? ग्रामवासी बोले—मध्यस्थ हम हैं। पंडित ने पुनः पूछा—शर्त क्या है? वे बोले—पंडितजी! इस राहगीर पंडित के पास शास्त्रों से भरी हुई बोरी और एक बैल है। यदि यह हारे तो शास्त्र भंडार तथा बैल आपका और आप हारे तो घर का माल-असबाब सारा पंडित का।

सारी बातें तय होने के बाद वह ग्रामीण पंडित बोला—पंडितजी! मेरा एक प्रश्न है—'तुम्बक-तुम्बक तुम्बा है जी तुम्बक-तुम्बक तुम्बा है'—इस प्रश्न का उत्तर दो।

नवागन्तुक पंडित इस प्रश्न की भाषा को नहीं समझ सका। उसने अपने सारे ग्रन्थ छान डाले, पर प्रश्न का उत्तर कहीं नहीं मिला। ग्रामीण लोग बोले—हमारे पंडितजी महापंडित हैं। आप इनसे हार गये, अतः शर्त के अनुसार सारी पुस्तकें और बैल इनको सौंप दो। ब्राह्मण-पुत्र बहुत दुःखी हुआ। अपना सर्वस्व वहीं छोड़कर वह पराजित मन अपने गांव पहुंचा।

पारिवारिक लोग उसकी प्रतीक्षा में खड़े हुए थे। उसे विमनस्क और देखकर पिता ने पूछा—पुत्र! बारह साल बाद घर आये हो, खुशी के इन यह उदासीनता क्यों? पुत्र का गला भर आया। उसने अपने साथ बी-

घटना सुना दी। ब्राह्मण सुनकर मुसकराया और बोला—बेटा ! चिन्ता मत करो। जाओ, विश्राम करो। मैं अभी जाता हूं और तुम्हारे ग्रन्थ लेकर आता हूं।

ब्राह्मण ने तिलक-छापा कर ब्राह्मणत्व को अच्छी प्रकार निखारा। साथ में एक बैल लिया और एक खाली बोरी। रास्ते में आरणिया छाणों (कण्डों) से बोरी को भरकर उसी ग्राम में पहुंचा। ग्रामवासियों ने पंडितजी का परिचय पाकर उसी प्रकार शास्त्रार्थ के लिए चुनौती दी। पंडितजी ने अपनी स्वीकृति दी। ग्राम के पंडित को सूचना मिली, वह विजित जुआरी की भांति दौड़ता हुआ आया। वही शर्त और वे ही मध्यस्थ। पंडित ने अपना वही 'तुम्बक तुम्बक तुम्बा' वाला प्रश्न दोहराया।

आगन्तुक पंडितजी बोले—प्रश्न ही अधूरा है, तब उत्तर कैसे होगा? मध्यस्थता करने वाले बोले—पंडितजी ठीक कह रहे हैं। अधूरे प्रश्न का उत्तर कैसे हो सकता है ? पहले पूरा प्रश्न करो। पंडित बगलें झांकने लगा तो उन्होंने आगन्तुक पंडित को सम्बोधित कर कहा—इस प्रश्न की पूर्ति आप ही कर दीजिए। पंडितजी रोब जमाते हुए बोले—सीधा तुम्बक-तुम्बक बोल दिया, तुम्बक आएगा कहां से ? पूरा पाठ इस प्रकार है—

"खेतस खेतस खेता है जी खेतस खेतस खेता है।
मेहस-मेहस मेहा है जी मेहस-मेहस मेहा है।
बीजस-बीजस बीजा है जी बीजस-बीजस बीजा है।
बेलस-बेलस बेला है जी बेलस-बेलस बेला है।
नालस-नालस नाला है जी नालस-नालस नाला है।
फूलस-फूलस फूला है जी फूलस-फूलस फूला है।
और फिर तुम्बक-तुम्बक तुम्बा है जी तुम्बक-तुम्बक तुम्बा है।"

गांववासी अब लगे अपने पंडित को कोसने। वे बोले—यह पाठ तो हम भी जानते हैं, पूरा पाठ इसी प्रकार है। हमारे पंडितजी पाठ खाते हैं। इस शास्त्रार्थ में ये पराजित हैं। इनको पराजित करने वाले आप पहले पंडित हैं। हम तो इन्हीं को परमेश्वर मान बैठे थे। पर अब ये हमारे यहां इस रूप में नहीं रह सकेंगे।

शर्त के अनुसार उन्होंने वह बैल, पुस्तकें और घर का सारा सामान पंडितजी को भेंट कर दिया। पंडितजी ने अपने घर पहुंचकर सारी पुस्तकें पुत्र को लाकर सौंप दीं। पुत्र ने विस्मित भाव से पूछा—पिताजी ! आपने उसे कैसे जीता ? पिता ने उत्तर दिया—पुत्र ! ऐसे पंडित मेरे जैसे अनपढ़ लोगों के द्वारा ही पीटे जाते हैं। तुम्हारे पांडित्य का परीक्षण विद्वद् परिषद् में हो सकता है, ऐसे पंडितों के सामने तो हम ही काफी हैं।

मूर्ख भी पंडित

एक भूखा ब्राह्मण कालिदास के पास पहुंचा। उसकी दयनीय स्थिति, उसके आकार, वस्त्रों और शब्दों से अभिव्यक्त हो रही थी। वह बोला—कविवर! आपके सहयोग बिना महाराजा भोज के निकट पहुंचना संभव नहीं है। आप कृपा करें तो मेरे लिए रोटी-पानी की जुगाड़ हो जाए।

कालिदास का मन करुणा से भर गया। उसने पूछा—'तुम कुछ पढ़े-लिखे हो?' 'नहीं, मैं तो कुछ नहीं जानता।' ब्राह्मण का उत्तर सुन कालिदास बोला—'तुम अच्छी पोशाक पहनकर राजसभा में पहुंचो और राजा का अभिवादन कर एक शब्द बोलो—'आशीर्वाद' आगे की स्थिति मैं संभाल लूंगा।'

ब्राह्मण के लिए 'आशीर्वाद' शब्द को याद रखना भी कठिन था। वह 'आशीर्वाद: आशीर्वाद:' रटता हुआ चल रहा था। रास्ते में एक ऊंट दौड़ रहा था। लोग चिल्ला रहे थे—'उष्ट्र: उष्ट्र:'। ब्राह्मण आशीर्वाद को भूल गया और 'उष्ट्र' शब्द को पकड़ लिया। थोड़ी देर बाद उष्ट्र शब्द भी उसकी पकड़ से निकल गया। अब वह 'उशरट: उशरट:' करता हुआ राजसभा में पहुंचा।

राजा भोज विद्वानों से घिरा बैठा था। नवागत पंडित ने दूर से ही राजा की ओर लक्ष्य कर कहा—'उशरट:'। वहां उपस्थित सब पंडित खिलखिलाकर हंस पड़े। कालिदास अपने स्थान से उठा और बोला—विद्वानो! आप लोगों को पंडित की पहचान नहीं है। नये अतिथि का इस प्रकार मखौल पांडित्य का उपहास है। हमारे अतिथि विद्वान् ने चार अक्षरों में महाराज की स्तुति की है। उन्होंने कहा है—

> उमया सहितो देव: शंकर: शूलपाणिना।
> रक्षतु त्वां ही राजेन्द्र! टकार: घनगर्जनात्॥

कालिदास के सहयोग से वह महामूर्ख भी पंडित कहलाकर कृतार्थ

धोवन और दूध

एक गरीब बुढ़िया का पुत्र जिस स्कूल में पढ़ता था, उसी स्कूल में एक राजकुमार भी पढ़ता था। बुढ़िया का वेटा प्रतिभा-सम्पन्न था और राजकुमार था मंदमति। वैठने का स्थान निकट होने से दोनों में मित्रता हो गई। राजकुमार के अध्ययन में वुढ़िया का लड़का सहयोग करने लगा, इससे उनकी मित्रता और प्रगाढ़ हो गई।

एक दिन अध्यापक ने वच्चों से कहा—विद्यार्थियो ! दूध पोष्टिक भोजन होता है। सुवह के नाश्ते में वच्चे दूध लेते रहें तो उनकी प्रतिभा और अधिक निखर जाएगी। वुढ़िया के वेटे को दूध का स्वाद ही याद नहीं था। उसने घर पहुंचकर दूध की मांग की। वुढ़िया ने उसको समझाना चाहा, पर वह समझा नहीं।

वुढ़िया इतनी गरीव थी कि पाव भर दूध जुटा पाना सम्भव नहीं था। उसने पुत्र के मन को समाहित करने के लिए गेहूं के आटे का धोवन वना दिया और उसमें थोड़ी चीनी डाल दी। लड़का उसे दूध मानकर पी गया। अव वह प्रतिदिन का क्रम वन गया। बुढ़िया अपने पुत्र को दूध के नाम पर धोवन पिलाकर व्यथित थी। पर वह निरुपाय थी, और कर ही क्या सकती थी ?

राजकुमार कई दिनों से वुढ़िया के पुत्र को अपने घर आमन्त्रित कर रहा था, पर वह इतना स्वाभिमानी है कि स्वीकृति देता ही नहीं था। आखिर राजकुमार के अत्यन्त आग्रह पर उसने इस शर्त पर जाना स्वीकार किया कि एक दिन राजकुमार भी उसके घर भोजन करेगा।

प्रातराश के समय राजकुमार ने निर्देश दिया—आज दूध के दो कटोरे यहां पहुंचा दें। रढ़ा हुआ मलाईदार दूध, ऊपर वादाम, नोजे, पिस्ते, इलायची आदि। राजकुमार ने एक कटोरा अपने मित्र के हाथ में थमा दिया और एक अपने हाथ में ले लिया। दूध देखते ही वुढ़िया के पुत्र को मितली आने लगी। दूध पर डाले हुए मेवे में उसको मक्खियों का आभास हुआ। उसने सोचा—वड़े घरों में नौकरों के हाथ से काम होता है। कौन संभाल रखता है रसोई की ? मेरी मां मुझे कितना

स्वच्छ दूध पिलाती है। यह ऐसा दूध मैं नहीं पी सकता।

राजकुमार ने मित्र की झिझक को बड़ी मुश्किल से तोड़कर उसे दूध पिलाने के लिए राजी किया। दूध पिया तो बड़ा रुचिकर लगा। ऐसा स्वादिष्ट दूध तो उसने कभी चखा ही नहीं था। दूध पीने से पहले उसकी झिझक स्वाभाविक थी, क्योंकि उसने सदा धोवन ही पिया था। धोवन पीने का आदी व्यक्ति दूध की गरिमा को कैसे पहचान सकता है।

मौत के चंगुल में मुसकान

अवस्था से वृद्ध, शरीर से असमर्थ और भूख से व्याकुल वनराज वन के एक प्रान्तर में शान्त भाव से वैठा है। शरीर और मन दोनों का पराक्रम चूक जाने के कारण वह खाद्य-सामग्री उपलब्ध नहीं कर सकता। सामने वृक्ष पर एक वन्दर वैठा है। उसका आमिष पाने के लिए वह उतावला है, पर है शक्तिहीन।

सिंह ने एक चाल चली। महात्मा का जामा पहना, वैराग्य का प्रदर्शन किया और आंखें जमीन में गड़ाकर चला। ऊपर से वन्दर ने देखा, विस्मित हुआ। जंगल का राजा इतना संयत और शान्त! नीचे की टहनी पर वैठकर वन्दर ने पूछा—वनराज, आज यह क्या रूप वनाया है? यह वैराग्य कव से और क्यों है? सिंह बोला—भाई! जीवन भर पाप किया, अव अवस्था ढल रही है, मन संसार से उद्विग्न हो गया अतः मैंने सव प्राणियों के साथ मैत्री का संकल्प कर लिया है।

वन्दर खुश हुआ। सोचा—हमारे पशु-परिवार में भी साधुता आ रही है। ऐसी पवित्र आत्मा के चरण-स्पर्श कर हम भी अपना कल्याण कर लें। यह सोच वह वृक्ष के नीचे उतर आया। उसने वनराज से चरण-स्पर्श की अनुमति मांगी तो वह बोला—भैया! ये सव उपचार हैं, मुझे इनकी कोई अपेक्षा नहीं है। वन्दर बोला—महात्मन्! आपको अपेक्षा नहीं है, पर मैं अपनी जरूरत के लिए ऐसा करना चहता हूं। सिंह इस वात पर मौन रहा तो वन्दर उसके निकट आया और नमस्कार-हेतु नीचे झुका।

सिंह ने मौका देखा और वन्दर की गर्दन पकड़ ली। वन्दर सिंह के छल को समझ गया। वचाव की दृष्टि से उसने एक उपाय सोचा। वह एकदम खिलखिलाकर हंसने लगा। मौत के मुंह में भी हंसी? सिंह ने आश्चर्य के साथ इसका कारण पूछा। वन्दर बोला—आज मैं बहुत खुश हूं क्योंकि आप जैसे महात्मा के द्वारा मेरी सहज सुगति हो रही है। मेरी हंसी का रहस्य यही है। अव आप कृपा कर मेरी इस जीवन-यात्रा को शीघ्र समाप्त करें। किन्तु उससे पहले मेरे मन की एक तीव्र अभिलाषा है, उसे भी पूरी करें। वनराज की सांकेतिक जिज्ञासा के उत्तर में वह वोला—मैंने आपका आक्रोश देखा, पर यह वात वहुत पुरानी हो गई। वर्तमा

में मैं आपके जीवन में अहिंसा और संयम देख रहा हूं। किन्तु आपका हास्य कभी नहीं देखा। कृपा कर एक बार मुसकान बिखेर दें, मैं कृतकृत्य हूं।

अपनी प्रशंसा सुनकर सिंह इस बात को भूल गया कि वह किस उद्देश्य से क्या कर रहा है। वह सहसा खिलखिलाकर हंसने लगा। मुंह खुलते ही बन्दर नौ-दो-ग्यारह। वह वृक्ष पर चढ़कर रोने लगा। वनराज ने पूछा—बन्दर ! तुम मेरी पकड़ में थे तब हंस रहे थे और अब प्राण बच गये तब रो रहे हो, क्यों ? बन्दर बोला—वनराज ! मैं उस समय हंसा था अपने बाचाव के लिए और अब रोता हूं तुम जैसे संतों पर, जो भोली दुनिया को अपने फरेब में लेकर किस प्रकार धोखा दे देते हैं।

ईर्ष्यालु पड़ोसी

एक सम्पन्न सेठ के घर में गाय, भैंस आदि पशु वहुत थे। गाय-भैंसें अच्छी नस्ल की थीं अत: वे दूध भी अच्छा देती थीं। दूध, दही, मक्खन किसी पदार्थ की कमी नहीं थी। उस सेठ के पड़ोस में एक ईर्ष्यालु व्यक्ति रहता था। वह सेठ की सम्पन्नता और पशुधन देखकर मन-ही-मन वहुत जलता था। उसकी जलन कभी-कभी अधिक वढ़ती तो वह कुछ जली-भुनी भी सुना देता था।

एक दिन वह भोजन करने वैठा। पड़ोस में भैंस का शव्द सुन वह आवेश में आकर वोला—सेठ ने कितनी मोटी भैंसें पाल रखी हैं, दिन भर अरड़ाती रहती हैं। ये मर क्यों नहीं जातीं? उसकी पत्नी ने यह वात सुनी और कहा—पड़ोसी की भैंस आपको क्यों अखरती हैं? पड़ोस में रहने के कारण हम भी इसका लाभ उठाते हैं। पड़ोसी के घर छाछ वनती है, वह हमें प्रतिदिन मिल जाती है। पर्व-त्योहार के दिन दूध भी मिल जाता है। हमें तो फायदा ही है।

पति वोला—तुम जानती नहीं हो, इन गाय-भैंसों ने मुझे कितना वेचैन वना रखा है? पड़ोसी के घर जव-जव विलौने का शव्द होता है, मेरे कलेजे में झरने की ताड़ियों का आघात होता है। मैं अव इसे अधिक समय तक सहन नहीं कर सकता।

ईर्ष्यालु व्यक्ति ने एक दिन अवसर देखा और एक भैंस चुरा ली। उसे मकान के नीचे भौंहरे में वांधकर चारा-पानी डाल दिया। भैंस के स्वामी को अप्रत्याशित रूप से भैंस के गायव होने की सूचना मिली। उसने आस-पास खोज कराई, पर पता नहीं लगा। पड़ोसी से इस सम्वन्ध में पूछा गया तो वह उत्तेजित होकर वोला—भट्टी में जले, आग लगे उसकी भैंस को जो मुझ पर झूठा इल्जाम लगाता है।

कुछ व्यक्ति पड़ोसी के प्रति संदिग्ध थे पर भैंस को विना देखे वे उसे चुनौती कैसे दें? खोजी लोगों को वुलाया गया। खोज पड़ोसी के घर तक जाते थे, पर भीतर नहीं थे। भीतर के खोज वह पहले से ही मिटा चुका था। वहुत खोजने पर भी भैंस नहीं मिली तो मामला पंचों के पास गया। पंच घटनास्थल पर पहुंचे।

उन्होंने सारी स्थिति की जानकारी की और 'धीज' कराने का फैसला दिया। 'धीज' का मतलव है सत्यता का परीक्षण। इस परीक्षण में पंचों ने लोहे के गोले को गरम कर संदिग्ध व्यक्ति के हाथों में देने का निश्चय किया। संदेह पड़ोस में रहने वाले उस व्यक्ति पर था। वह व्यक्ति इसके लिए तैयार हो गया।

जब उसे बुलाया गया तो वह हाथ में तवा लेकर आया। पंचों ने कहा—यदि तुमने भैंस नहीं चुराई है तो तवा दूर रख दो और ये गोले हाथों में लो। यह सुनकर वह वोला—आप तो सच्चे हैं, फिर यह संडासी का व्यवधान क्यों ? आपकी संडासी और मेरा तवा, आपके हाथ तो मेरे भी हाथ। इस बात पर पंच मौन हो गए। धीज नहीं हुआ।

अपराह्न में वंटे (रंधा हुआ गंवार) के समय भैंस बोलने लगी। लोगों ने भैंस की आवाज पहचान ली। वे घर में घुसे और भौंहरे में बंधी हुई भैंस को निकाल लाए। ईर्ष्यालु व्यक्ति का षड्यंत्र विफल हो गया, उसे अपनी हार स्वीकार करनी पड़ी।

कायोत्सर्ग से मुक्ति

वृक्ष पर एक हंस परिवार रहता था। एक वृद्ध हंस के नेतृत्व में युवक और वाल हंस सुखपूर्वक जी रहे थे। वृक्ष के मूल में एक वेल अंकुरित हुई और कालांतर में वह वृक्ष के ऊपर चढ़ने लगी। वह वेल जव तने को पार कर शाखाओं-प्रशाखाओं पर छाने लगी तो वृद्ध हंस ने सुझाव दिया—इस वेल को उखाड़ देना चाहिए। दूसरे हंसों ने उपेक्षा कर दी। वृद्ध हंस ने उनको वार-वार वेल उखाड़ने की वात कही तो वे उत्तेजित होकर वोले—आपकी समझ कितनी अधूरी है? इस वेल से हमें क्या हानि होगी? यह तो हमें अच्छा संरक्षण दे सकती है। धूप, तूफान, सर्दी और वर्षा सव हमें तंग करती हैं, अब हम निश्चित होकर रह सकेंगे। वेल ने चारों ओर से वृक्ष को घेर लिया। एक ओर छोटा-सा रास्ता रहा, जो पक्षियों के आने-जाने से आवृत्त नहीं हो सका।

एक दिन एक वहेलिया उधर से गुजरा। अनेक हंसों को एक सीमित और आच्छन्न परिधि में देखकर वह खुश हुआ। गमनागमन के छोटे-से मार्ग पर जाल विछा देने मात्र से सारे हंस एक साथ उसे उपलब्ध हो सकते थे। उसने वैसा ही किया। अब सव हंस घवराए और वृद्ध हंस की वात न मानने के कारण पश्चात्ताप करने लगे।

उनकी कातर आंखों में मार्गदर्शन की याचना थी। वृद्ध हंस द्रवित होकर वोला—मैंने तुमको पहले ही कह दिया था कि इस वेल को जड़-मूल से उखाड़ दो। तुम लोग इस विषय में लापरवाह रहे। थोड़ी-सी लापरवाही से यह काम वढ़ गया। अव तो एक ही उपाय है कि तुम लोग श्वास रोककर पड़े रहो और जव मैं संकेत करूं, उड़ जाना।

वृक्ष की छाया में विश्राम करने के वाद वहेलिये ने अपना जाल संभाला। जाल में एक भी हंस नहीं था, किन्तु वे सव मृत-से होकर शाखाओं पर लटक रहे थे। उस समय हंसों को मारना निषिद्ध था। वहेलिये ने सोचा—यदि कोई शिकायत कर देगा तो मारा जाऊंगा। उसने तत्काल अपना जाल समेटा। जाल सिमटते ही वृद्ध हंस ने संकेत किया। एक-एक कर सव हंस एक साथ उड़ गये।

वाचालता

एक कल्पनाशील पथिक अशुभ कल्पनाओं के सृजन और उनकी अभिव्यक्ति में बहुत रस लेता था। जब तक वह अपनी सोची हुई बात कह नहीं देता, उसे संतोष नहीं होता। एक दिन वह किसी शहर के भोजनालय में भोजन करने गया। भोजन बनाने वाली बुढ़िया को चावल-मूंग की खिचड़ी बनाने का निर्देश देकर वह एक ओर बैठ गया। बुढ़िया चावल-मूंग भिगोकर दूसरे कार्य में व्यस्त हो गई।

इसी बीच उसने देखा कि राहगीर बैठा-बैठा सिर हिला रहा है। बुढ़िया ने पूछा—क्या कर रहे हो? वह बोला—ऐसे ही कोई बात मन में आ गई। क्या बात मन में आयी है? बुढ़िया द्वारा पुनः पूछे जाने पर वह बोला—यह भैंस किस की है? बुढ़िया ने उत्तर दिया—मेरी है। राहगीर बोला—यह इतनी मोटी भैंस मर गई तो बाहर कैसे निकलेगी? तुम्हारे घर का दरवाजा तो इतना छोटा है। यह सुनते ही बुढ़िया उबल पड़ी—अभी निकल घर से, आया है मेरी भैंस को मारने! जबान वश में नहीं रहती है। राहगीर ने मांफी मांगकर जैसे-तैसे बुढ़िया को शांत किया।

थोड़ी देर हुई, राहगीर फिर सिर हिलाने लगा। बुढ़िया ने पूछा—अब फिर सिर क्यों हिला रहे हो? राहगीर बोला—यह स्त्री कौन है? यह मेरी पुत्रवधू है। बुढ़िया के इस उत्तर पर उसने प्रतिप्रश्न किया—तुम्हारा पुत्र कहां है? वह व्यापार के लिए परदेश गया है। बुढ़िया के ऐसा कहने पर वह बोला—मांजी! तुमने इसके पति को परदेश भेजकर अच्छा नहीं किया। यदि वह वहीं पर मृत्यु को प्राप्त हो गया तो इसकी क्या हालत होगी? इसने हाथ में जो चूड़ा पहन रखा है वह इतना छोटा है, इसे तो फिर फोड़कर ही निकालना पड़ेगा। राहगीर के इस कथन ने बुढ़िया को आपे से बाहर कर दिया। वह उसे कोसने लगी और बिना भोजन किए ही घर से निकल जाने के लिए कहा।

राहगीर ने अपने पैसे वापस मांगे तो बुढ़िया ने कहा—ये अपने मूंग-चावल ले जा। उसके पास कोई बर्तन तो था नहीं इसलिए उसने अपने अंगोछे में मूंग

और चावल डलवा लिये। चावल-मूंग पानी में भिगोए हुए थे, अत: अंगोछे से पानी टपकने लगा। शहर से गुजरते समय लोगों ने पूछा—भाई ! यह क्या झर रहा है राहगीर बोला—महाशय ! यह मेरी जवान झर रही है। यदि मैं अपनी जीभ से बुरी जवान नहीं बोलता तो मेरी यह हालत नहीं होती।

ढपोरशंख

दक्षिणावर्त उस शंख का नाम है जिसके आवर्त दायीं तरफ हो। इससे सम्बन्धित एक कहानी है, जो इस प्रकार है—

एक पंडित देवी का भक्त था। भक्त ने देवी की विशेष उपासना की और देवी ने खुश होकर उसको वरदान दिया कि तुम चाहो जो मांग लो। भक्त बोला—'मैं भूखा हूं, रोटी-पानी की जुगाड़ कर दो तो अच्छा है। देवी ने उसको एक दक्षिणावर्त शंख देकर कहा—इससे तुम जो कुछ मांगोगे मिल जाएगा। भक्त खुश होकर चला गया। मार्ग में उसे भूख लगी। उसने एक पट्ट बिछाकर उस पर शंख रख दिया। उसकी पूजा की और भोजन मांगा। शंख ने उसकी मांग पूरी की।

अपनी उपलब्धि पर संतुष्ट होता हुआ वह आगे चला और रात्रिकालीन विश्राम के लिए एक मकान में ठहरा। भोजन के समय जब उसे खाने के लिए कहा गया तो वह बोला—मेरे पास सब कुछ है, आप चिंता न करें। वहां उसने सबके सामने पूर्व विधि द्वारा शंख से भोजन मांगा और रुपये मांगे। जो कुछ मांगा वह मिल गया। मकान-मालिक के मन में लोभ आ गया। उसने रात के समय में वह शंख निकाल लिया और उसके स्थान पर वामावर्त शंख रख दिया। भक्त उसको लेकर अपने घर पहुंचा। वहां उसने शंख के सामने अपनी मांग रखी, पर निष्फल। 'अरे! यह क्या? गजब हो गया।' दुःखी भक्त पुनः देवी की शरण में गया और तीन दिन का उपवास कर बैठ गया। देवी प्रकट हुई। भक्त ने अपनी सारी स्थिति बताकर दूसरा शंख मांगा। देवी ने कहा—'शंख अब कहां से आए! भक्त बोला—मैं तो यहां से हटूंगा नहीं, देना हो तो दो अन्यथा ब्रह्म-हत्या का पाप तुम्हारे सिर आएगा।'

देवी ने एक दूसरा शंख देते हुए उसे कहा—यह शंख है ढपोरशंख। इससे जितना मांगा जाता है उससे दुगुना देने को कहता है, पर देता कुछ नहीं है। उस समय कह देना—अभी नहीं, बाद में देखूंगा। इस शंख को लेकर व्यक्ति के घर जाओ। तुम्हें तुम्हारा शंख मिल जाएगा।

भक्त शंख लेकर वहीं पहुंचा। शंख की पूजा कर उसने मांग की—'लाओ दस हजार। लो वीस हजार—यह शंख का जवाव था। कुछ समय तक उसने मांग की और उसे वाद में देना कहकर टाल दिया। मकान-मालिक ने उस शंख को हड़पना चाहा। भक्त कपट-नींद लेकर सो गया। मकान-मालिक ने वह शंख निकाला, उसके वदले में दक्षिणावर्त शंख रख दिया। भक्त अपना शंख लेकर चलता वना। दूसरे दिन मकान-मालिक ने शंख की पूजा कर अपनी मांग रखी। शंख दुगुना देने की वात कहता पर देता कुछ नहीं। मकान-मालिक वोला—यह क्या? देने का कहते हो पर देते कुछ नहीं। यह सुनकर शंख वोलता है—

लक्षं लक्षं पुन॰ र्लक्षं दाहिणो दक्षिणायनः
अहं डफोरशंखोऽस्मि वादिम न ददामि च ॥

मकान-मालिक हताश हो गया।

पोथे का बैंगन

एक कथाभट्ट कथा सुनाता था। प्रतिदिन नयी-नयी कथाएं और प्रासंगिक चर्चाओं में श्रोता लोग अच्छा रस लेते थे। एक दिन चर्चा के संदर्भ में बैंगन पर बात चली। कथाकार ने पुस्तक में वर्णित बैंगन के अवगुण बताते हुए कहा—यह बहु-बीजा है, तामसिक है, वेगुण-गुणरहित है। इसलिए इसका प्रयोग कभी नहीं करना चाहिए। श्रोता लोग पंडितजी की प्रतिपादन शैली से प्रभावित हुए। कई व्यक्तियों ने बैंगन खाने का परित्याग भी कर दिया।

कथा पूरी हुई। कथाभट्ट अपने घर के लिए रवाना हुए। साथ में कुछ भक्त भी थे। रास्ते में सब्जीमण्डी आ गई। कथाभट्ट सब्जी खरीदने के लिए रुके और बैंगन का मोल-भाव पूछने लगे। भक्तों को यह अटपटा-सा लगा, पर बोलने का साहस नहीं हुआ। एक भक्त से चुप नहीं रहा गया। वह बोला—पंडितजी ! अभी तो आप बैंगन की इतनी बुराई कर रहे थे और अब खाने के लिए खरीदने लगे हैं। क्या बात है ?

पंडितजी एक बार झिझके, फिर रोष प्रदर्शित करते हुए बोले—मूर्ख ! तू कुछ समझता भी नहीं, वे बैंगन पोथे के थे और ये खाने के हैं। पोथे की सब बातें मानकर बैठ जाएं तो जी भी नहीं सकते।

तीन प्रकार के घड़े

एक व्यक्ति के पास तीन घड़े हैं—एक अखण्ड, एक ग्रीवा से फूटा हुआ तथा एक नीचे पैंदे से फूटा हुआ। वह उन तीनों को घी से भरता है। अखण्ड घड़ा ऊपर तक घी को धारण कर लेता है, उससे अधिक जो घी डाला जाता है वह उसमें समाता नहीं है। ग्रीवा से फूटे हुए घड़े में ग्रीवा तक घी सुरक्षित रहता है। उससे ऊपर निकल जाता है। जो घड़ा नीचे से फूटा हुआ है, उसमें घी को धारण करने की क्षमता नहीं है। इसलिए जितना घी डाला जाता है, सारा का सारा निकल जाता है। यह एक रूपक है। इसके द्वारा रूपायित हैं तीन प्रकार के व्यक्तियों की योग्यता। प्रथम अखण्ड घड़े की तुलना ब्रह्मचारी साधकों से की गई है। उनके शरीर में सातों धातुओं का उत्पादन और उपयोग उचित मात्रा में होता है। इसलिए उनका शरीर-रूप घट भरा रहता है। कदाचित् उत्पादन में मात्रा का अतिक्रमण होता है तो वीर्य की जो अतिरिक्त मात्रा होती है, उसका दुःस्वप्न आदि कारणों से क्षरण हो जाता है। इससे साधक का कोई खास नुकसान नहीं होता।

दूसरे वर्ग में वे गृहस्थ आते हैं जो स्वदार सन्तोषी होते हैं। ये ग्रीवा से फूटे हुए घड़े के समान हैं। ऐसे घड़े में ग्रीवा तक घी सुरक्षित रहता है, उससे ऊपर का निकल जाता है। सीमित संभोग से जो वीर्य-क्षरण होता है, उसमें शरीर ऊर्जा से रिक्त नहीं होता। उसकी अधिक ऊर्जा सुरक्षित रहती है और थोड़ा नुकसान होता है। इस मध्यम मार्ग का आलम्बन लेकर सामान्य गृहस्थ समाज द्वारा मान्यता प्राप्त नैतिक सीमा में आ जाते हैं।

तीसरे वर्ग में वे व्यक्ति आते हैं जो प्रकृति-विरुद्ध आचरण करते हैं। अप्राकृतिक संभोग और व्यभिचार दुराचार की कोटि में चले जाते हैं। ऐसे व्यक्ति पैंदे से फूटे हुए घड़े की तुलना में आते हैं। पैंदे से फूटा हुआ घड़ा घी को धारण नहीं कर सकता, इसी प्रकार दुराचारी व्यक्ति वीर्य-धारण की क्षमता को खो देते हैं। वे शरीर और मन दोनों ओर से अक्षम होकर सत्वहीन जीवन जीते हैं।

सद्गति और दुर्गति

एक युवक महात्मा के चरणों में उपस्थित हुआ। डबडबाई आंखें उसकी मानसिक व्यथा को प्रकट कर रही थीं। महात्मा के पूछने पर उसने बताया—महात्मन् ! मेरा पिता मुझे बहुत प्यार करता था, आज अचानक उसकी मृत्यु हो गई। पिता की मृत्यु ने मुझे अकेला और असहाय बना दिया। योगी ने कहा—भाई, इसमें दुःख करने की क्या बात है ? जो इस दुनिया में आता है, उसे एक दिन तो कभी-न-कभी जाना ही होता है। युवक ने साहस बटोरते हुए कहा—महात्माजी ! और तो कोई बात नहीं है, मुझे मात्र एक ही चिन्ता है कि मेरे पिता की सद्गति हुई या नहीं ? पुत्र होने के नाते मेरा यह कर्तव्य है कि मैं अपने पिता की सद्गति करवाऊं और इसी प्रार्थना को लेकर मैं आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूं। आप महान् हैं। अनेक सिद्धियों के ज्ञाता हैं। मेरा आपसे निवेदन है कि कृपया आप मेरे पिता की सद्गति कर दें।

महात्मा ने समझाया—भाई, उसने जैसे कर्म किए थे, उनके अनुसार उसकी गति हो गई। अब तुम्हें इसकी चिन्ता करने की अपेक्षा नहीं है। पर युवक की समझ में यह बात नहीं आयी। उसका एक ही आग्रह रहा—किसी तरह मेरे पिता की सद्गति हो जाए। आखिर महात्मा को एक उपाय सूझा। उन्होंने कहा—तुम दो घड़े लेकर मेरे पास आओ। एक शुद्ध घी से भरा हुआ और दूसरा कंकरों से भरा हुआ। फिर मैं तुम्हारे पिता की सद्गति कर दूंगा। पिता की सद्गति का इच्छुक युवक तत्काल दो घड़े लेकर महात्मा के पास पहुंच गया। महात्माजी उसे नदी तट पर ले गए और उन दोनों घड़ों को नदी में फेंकने का आदेश दिया। युवक इस आदेश से बहुत हैरान हुआ, पर करे भी क्या ? पिता की सद्गति जो करनी थी। ज्योंही दोनों घड़े फूटे, कंकर नीचे बैठ गए और घी पानी के ऊपर तैरने लगा। महात्मा ने युवक से कहा—खड़े-खड़े क्या देखते हो ? कंकर डूब गए हैं, उन्हें पानी के ऊपर तैरा दो।

महात्मन्, कंकर भारी होते हैं, वे तो डूबेंगे ही। मैं उन्हें कैसे तैरा सकता हूं ?—युवक ने विनम्रता से उत्तर दिया। महात्मा ने कहा—अच्छा, तुम कंकरों

को नहीं तैरा सकते तो कोई बात नहीं, कम-से-कम घी को तो डुबो दो। युवक ने कहा—यह भी कैसे संभव हो सकता है! घी हल्का होता है, उसे कैसे डुबोया जा सकता है?

योगी ने रहस्य का उद्घाटन करते हुए कहा—भले आदमी! तुम जब कंकरों को नहीं तिरा सकते और घी को नहीं डुबो सकते तो फिर मैं तुम्हारे पिता की सद्गति या दुर्गति कैसे कर सकता हूं। उसकी गति उसके हाथ में है। उसने यदि अच्छे कर्म किए हैं तो निर्भार होकर सद्गति में गया है और बुरे कर्म किए हैं तो उसे दुर्गति में जाने से कौन बचा सकता है?

कर्म छिपे न भभूत लगाए

बादशाह की हूरमां और एक पिंजारिन में मित्रता हो गई। पिंजारिन का आवास महल के नीचे था। हूरमां गवाक्ष में खड़ी हो जाती और पिंजारिन सामने। दोनों मन खोलकर बातें करतीं। एक बार उन दोनों ने एक समय में पुत्र को जन्म दिया। प्रसव के कई दिनों बाद जब वे मिलीं, हूरमां ने कहा—तेरा बेटा कैसा है? दिखला तो सही। पिंजारिन अपने पुत्र को लेकर बाहर आयी। हूरमां बच्चे का सौन्दर्य देखकर अभिभूत हो गई। उसका शाहजादा श्यामवर्ण का था। उसने सोचा, दिल्ली के तख्त पर यह अच्छा लगेगा? काश! मेरा पुत्र इतना सुन्दर होता। सुन्दरता के आकर्षण में उसने बच्चों को परस्पर बदल लेने का सुझाव रखा। पिंजारिन सहमत हो गई। अब बादशाह का लाड़ला पिंजारिन की झोंपड़ी में पल रहा है और झोंपड़ी में जन्मा बच्चा महलों में सुख भोग रहा है। स्थान परिवर्तन होने पर भी दोनों में अपने-अपने वंशानुगत संस्कार विकसित हो रहे हैं।

एक दिन बादशाह महल के पिछवाड़े वाले मैदान से उतरा। वहां खड़े दो बच्चों, जो अपने आपको सन्तरी बता रहे थे, ने बादशाह का मार्ग रोक लिया। कारण पूछने पर उन्होंने बताया—'यहां बादशाह का दरबार लगा है।' बादशाह ने साश्चर्य अपनी दृष्टि उधर घुमाई और देखा—एक किशोर ऊंचे टीले पर बैठा कुछ आदेश-निर्देश दे रहा है। उसके सामने कई बच्चे बैठे हैं। कहीं मन्त्रणा हो रही है, कहीं पुलिस खड़ी है और कहीं न्याय किया जा रहा है। बादशाह कुछ संदिग्ध हुआ। उस बच्चे में अपने कुल-क्रमागत संस्कार देख वह हैरान भी था।

उस अजनबी बालक के बारे में सोचता हुआ बादशाह महलों में पहुंचा। वहां उसने देखा—शाहजादा खूंटी पर एक डोरी बांधकर लकड़ी से उसे ऊपर-नीचे कर रहा है। उसके ऐसा करने से 'दिग् दूं, दिग् दूं' पींजने जैसी अस्फुट ध्वनि फूट रही है। बादशाह का सन्देह विश्वास में बदल गया। उसने तत्काल हूरमां को बुलाया और पूछा—यह कौन है? हूरमां सहमती हुई-सी बोली—यह आपका शाहजादा है। बादशाह ने तलवार हाथ में ली और कहा—सच-सच बत यहा कौन है, अन्यथा जीवित नहीं छोड़ूंगा? हूरमां घबरा गई। उसने सही स्थि

स्पष्ट कर दी। बादशाह ने हूरमां को विवेक देते हुए कहा—तुम्हारी अक्ल कहां चली गई? शाहजादा काला है इसलिए उसे बदल लिया। तुम्हारे उस काले शाहजादे ने आज हमको रोक लिया और यह पिंजारिन का बेटा यहां 'दिग् दूं' कर रहा है। मैं अपने महलों में ऐसा नहीं होने दूंगा। यह राजमहल है या पिंजारिन की कुटिया? हूरमां को अपनी भूल का गहरा अनुताप हुआ। अब पिंजारिन के लड़के की आजीविका की व्यवस्था कर उसे राजप्रासाद से बाहर भेज दिया गया और शाहजादा को पुनः महलों में बुला लिया गया।

नाई की करतूत

एक बाल जामाता अपनी ससुराल जा रहा था। कुछ लोगों ने उसको समझाया कि ससुराल में अधिक भोजन करना बुरा माना जाता है। ससुराल पहुंचकर वह सब लोगों से मिला। भोजन करने बैठा, दो-चार ग्रास लेकर उठ गया। मध्याह्न में उसने कुछ नहीं लिया। शाम का भोजन भी बहुत हल्का किया। रात घिरते-घिरते वह भूख से व्याकुल हो उठा। उसने अपने साथ आए नाई को जगाया और कहा—भूख से प्राण निकल रहे हैं, कुछ खाने को दो। नाई बोला—सवेरा होने दो। सवेरा होने तक प्रतीक्षा कर सके, ऐसी स्थिति उसकी नहीं थी। आखिर नाई को एक उपाय सूझा।

वे जिस कमरे में सो रहे थे, उसकी एक बारी नीचे मिठाई-भंडार में खुलती थी। नाई बोला—मैं तुम्हें रस्से से लटकाकर नीचे इस कमरे में उतार देता हूं। पेट भरकर खा लो। जब ऊपर आना हो तो मुझे संकेत कर देना—'लै ताण।' उधर नाई को गहरी नींद आ गई, वह पौ फटने के समय जगा। तब तक घर में हाहाकार मच गया। घर के छोटे-बड़े सभी व्यक्ति जग गए। मिष्टान्न-भंडार के समीप गुजरते समय 'लै ताण, लै ताण' की शब्दावली ने उनके मन में भूत-प्रेत का भय उत्पन्न कर दिया।

नाई को अपनी भूल का भान हुआ। वह तत्काल नीचे आया और बोला—क्या बात है? उन लोगों ने कहा—मिष्टान्न-भंडार में लहताण घुस गई। नाई बोला—बहुत बुरा हुआ। लहताण को निकालना भी बहुत कठिन है। मैंने अपने गांव में एक-दो बार ऐसा काण्ड देखा है। घर के सब सदस्यों ने नाई की मिन्नतें कीं कि आप जैसे-तैसे हमें इस संकट से बचाइए। नाई ने कहा—मैं प्रयास करके देखता हूं। आपके सौभाग्य से सफल हो जाऊं तो बहुत बात है। आप मुझे एक लाठी और लबादा दे दीजिए। घर के सब लोगों के भीतर भेज दीजिए। कोई भी बीच में आ गया तो 'लहताण' जाएगी। सब लोगों के चले जाने पर उसने दरवाजा खोला। जा। देखते ही कहा—'यह क्या कर दिया?' नाई ने अपनी भूल स्वीक

हुई स्थिति को सुधारने का आश्वासन दिया। उसने वह लवादा जंवाई पर डाल दिया और लाठी से वर्तनों को तोड़ने लगा। कुछ समय वाद वह उसको आगे करके दौड़ा और गांव के वाहर तक छोड़ आया। घर लौटकर उसने सव लोगों को इकट्ठा किया और कहा—आपका थोड़ा नुकसान तो हो गया, पर 'लहताण' को ऐसा धमकाया है कि वह फिर कभी इधर आने का साहस ही नहीं कर सकेगी।

भीड़तंत्र

राजसभा में एक नैमित्तिक आया और राजा को नमस्कार कर बोला—राजन ! अमुक दिन वर्षा होगी, उसका पानी मादक होगा। जो कोई व्यक्ति उस पानी को पीएगा अथवा उसमें स्नान करेगा, वह पागल हो जाएगा। आप इस बात का ध्यान रखना और अपनी प्रजा को सूचित करवा देना। राजा को इस बात पर विश्वास नहीं हुआ, इसलिए किसी को कुछ नहीं बताया।

निश्चित समय पर वर्षा प्रारंभ हो गई, इससे उसका मन थोड़ा संदिग्ध हुआ। उसने राजपरिवार में इसकी सूचना कर नागरिकों को सूचित करने का आदेश दिया। राजा का आदेश पहुंचे, उससे पहले ही नागरिक जल-स्नान-पान आदि करके पागल हो चुके थे। राजा को इस बात का पता चला। वह मंत्री को साथ ले घोड़े पर चढ़ नगर का निरीक्षण करने गया। उसने देखा कि एक चौक में हजारों की भीड़ है और सब लोग कपड़े उतारकर नाचने-गाने में लीन हो रहे हैं। राजा वहां से वापस मुड़े, तब तक कुछ लोगों ने आकर उनको घेर लिया और कहा—हमारे बीच ये दो पागल कहां से आ गए ? पकड़ो इन्हें, मारो और पागलपन उतारो। राजा ने यह सुना और मंत्री की ओर देखा। मंत्री बोला—महाराज ! ये हमें जान से मार देंगे। खैर इसी में है कि हम भी कपड़े उतारकर इनके साथ हो जाएं। पागल न होने पर भी राजा और मंत्री विवश होकर पागलों के साथ कपड़े उतारकर नाचने लगे और अपनी जान बचाई।

समय की सूझ

काजीजी बच्चों को पढ़ाते थे। एक बार बादशाह ने उनको याद किया। काजीजी उपस्थित हुए। बादशाह ने कहा—मेरे मन में चार सन्देह हैं, आप समाधान दें। काजीजी ने प्रश्नभरी दृष्टि से बादशाह की ओर देखा। बादशाह अपने प्रश्न रखते हैं—

खुदा कहां रहता है ?
खुदा क्या खाता है ?
खुदा क्या पहनता है ?
खुदा क्या करता है ?

प्रश्न सामान्य थे, किन्तु आकस्मिकता के कारण काजीजी घबरा गए। उनकी घबराहट देख बादशाह बोले—हमने आपको गुरु माना है, गुरु भी समस्याओं का समाधान नहीं देंगे तो कौन देगा ? सात दिनों के भीतर उत्तर मिल जाए तो ठीक, अन्यथा आपका देश से निष्कासन करवा दूंगा।

काजीजी दिमाग में उलझन लेकर लौटे। बच्चों को पढ़ाने बैठे, मन उचटा हुआ था। एक मुंहलगा बच्चा उनके पास आकर बोला—गुरुजी ! आज क्या हो गया ? उदास और अनमने-से क्यों बैठे हैं ? काजीजी उपेक्षा भरे लहजे में बोले—तुम बच्चे मेरी मुसीबत को क्या समझो ? बच्चे ने आग्रह किया और काजीजी ने चारों प्रश्न बता दिए। बच्चे ने प्रसन्न होकर कहा—इतनी छोटी-छोटी बातों में उलझ गए ? इनके उत्तर मैं दे सकता हूं, बिलकुल सही उत्तर दूंगा। आप मुझे बादशाह के पास ले चलिए। काजीजी स्वयं उत्तर जानने के लिए उत्सुक थे। पर बच्चा बड़ा शैतान था। वह दृढ़ता से अपनी बात पर अड़ा रहा।

काजीजी को पूरा विश्वास नहीं हुआ, फिर भी वे कुछ आश्वस्त थे। सातवें दिन वे बच्चों के साथ दरबार में पहुंचे। बादशाह ने अपने आदेशानुसार उत्तर देने के लिए निर्देश दिया। काजीजी सहमते हुए बोले—जहांपनाह ! इन प्रश्नों का उत्तर मैं क्या दूं ? मेरे नन्हे-मुन्ने दे सकते हैं। वह बच्चा काजीजी के आगे

खड़ा हो गया और बोला—कितने सवाल हैं आपके? बादशाह ने कहा—चार। चार क्या, चालीस होने चाहिए। बच्चे के साहस का सभासदों पर गहरा प्रभाव पड़ा। बच्चा उत्तर देने के लिए उद्यत है। बादशाह और बच्चे के बीच हुए प्रश्नोत्तर इस प्रकार हैं—

खुदा कहां रहता है?	वह घट-घट में रहता है।
खुदा क्या खाता है?	वह गम खाता है।
खुदा क्या पहनता है?	वह दिग्वस्त्र पहनता है।
खुदा क्या करता है?	वह काजी को पाजी करता है और पाजी को काजी करता है।

अन्तिम उत्तर सुनकर सभासद् हंसी से लोट-पोट हो गए। काजीजी को काटो तो खून नहीं। बादशाह बच्चे के साहस और बुद्धिमत्ता पर बहुत खुश हुए। समय पर बड़ा व्यक्ति छोटा हो जाता है और छोटा बड़ा।

हमीर हठ

रणथंभौर के शासक अलाउद्दीन खिलजी ने एक व्यक्ति को कठोर दंड दिया। दंडित व्यक्ति चित्तौड़ के राणा हमीर की शरण में चला गया। रणथंभौर के शासक ने अपने व्यक्ति को वापस मांगा तो चित्तौड़ के राणा ने यह कहकर उसे लौटाने से इनकार कर दिया कि वे अपने शरणागत व्यक्ति को पूर्ण संरक्षण देंगे।

अलाउद्दीन खिलजी ने इस प्रसंग को लेकर चित्तौड़ पर चढ़ाई कर दी। राणा हमीर मुकावले के लिए तैयार हो गए। युद्ध के लिए सज्जित होकर प्रस्थान करने से पहले वे अपने अन्तःपुर में गए। उन्होंने अपनी पत्नियों से कहा—मुझे दृढ़ विश्वास है कि मैं विजयी होकर लौटूंगा। कदाचित् ऐसा नहीं हुआ तो हम तुम्हें संकेत करवा देंगे। पराजय की सूचना मिलते ही तुम लोग अपने आपको समाप्त कर देना।

युद्ध में राणा हमीर विजयी हुए। उन्होंने अपनी विजय की सूचना अन्तःपुर में पहुंचाने का निर्देश दिया। विजयोन्माद से भरे हुए सैनिकों ने प्रमादवश पराजय का संकेत कर दिया। संकेत मिलते ही सारा अन्तःपुर जलकर भस्म हो गया।

राणा राजमहल में पहुंचकर अन्तःपुर की स्थिति देखते ही सन्न रह गए। छोटे-से प्रमाद ने कितना अनर्थ कर दिया! अन्तःपुर के इस प्रकार भस्म होने से वे दुःखित हुए और उस दुःख-शमन के लिए उन्होंने जौहर करने का निर्णय लिया।

राज्य के वरिष्ठ अधिकारियों तथा प्रजा के प्रतिनिधियों ने राणा को समझाया कि आप इतनी-सी वात के लिए दुःख न करें। आपके लिए एक नहीं, वीसों कन्याएं तैयार हैं। पर राणा नहीं माने। वे वोले—

सिंह-संगम सुपुरुष वयण, केल फलैं इक डार।
त्रिया तैंल हमीर हठ, चढ़ै न दूजी वार॥

मेरी भूल से अन्तःपुर जला है। उस भूल का प्रायश्चित्त मेरे जलने से ही होगा। कहा जाता है कि राणा हमीर ने जिन्दा जौहर करके अपना हठ पूरा किया।

प्यार, न्याय और संरक्षण

यूनान का बादशाह बहुत दयालु था। प्रजा उसे बहुत प्यार करती थी और वह भी अपनी प्रजा का पुत्रवत् पालन करता था। एक बार अचानक बादशाह बीमार हो गया। दूर-दूर से डॉक्टर एवं वैद्य बुलाए गए, पर किसी का उपचार काम नहीं आया। एक बार एक अनुभवी वैद्य बादशाह के समक्ष उपस्थित हुआ। उसने कहा—राजन् ! आपकी बीमारी असाध्य है पर एक उपाय द्वारा इससे मुक्त हुआ जा सकता है। राजा और मन्त्री सब उत्सुक हो गए उस उपाय को सुनने के लिए।

वैद्य ने कहा—एक सर्वलक्षण सम्पन्न बच्चे का कलेजा यदि आपको मिल सके तो बीमारी की चिकित्सा हो सकती है अन्यथा यह असाध्य है। दयालु बादशाह पहले तो ऐसा अन्याय करने को तैयार नहीं हुआ, पर मंत्रियों और प्रजा के आग्रह ने उसे ऐसा करने को बाध्य कर दिया।

राजकर्मचारियों द्वारा पूरे शहर में खोज प्रारम्भ हुई। सर्वलक्षण सम्पन्न बालक को पाने के लिए यह घोषणा कर दी गई कि बालक के बराबर सोना तोलकर मां-बाप को दिया जाएगा। कुछ ऐसे अभागे मां-बाप भी मिल जाते हैं जो धन के लिए अपनी संतान को बेचने के लिए तैयार हो जाते हैं। एक ब्राह्मण दम्पति ने सोचा—हमारे सात लड़के हैं, एक न भी होगा तो क्या फर्क पड़ेगा ? क्यों न एक बालक को बेचकर दरिद्रता दूर कर लें।

ब्राह्मण दम्पत्ति ने बालक के बराबर स्वर्ण लेकर बालक को राजकर्मचारियों के हाथ सौंप दिया।

एक व्यक्ति द्वारा न्यायालय में याचिका प्रस्तुत की गई कि राजा के प्राणों की रक्षा-हेतु एक निरपराध बच्चे की बलि अवैध है। न्यायालय ने फैसला दिया कि राजा का जीवन समस्त जनता का जीवन है इसलिए उसकी रक्षा के लिए बलि देना अवैध नहीं है।

न्यायालय के फैसले के साथ ही जल्लादों को आदेश दिया गया बालक का कलेजा निकालने के लिए। जल्लादों ने ज्यों ही बच्चे को मारने के लिए कटार

हाथ में ली, बच्चा जोर से हंसने लगा।

राजा अपनी प्रजा के साथ वहीं उपस्थित था। मौत के समय भी बालक के चेहरे पर खिलती मुसकान देखकर उसके आश्चर्य की सीमा न रही। राजा ने बालक की हंसी का कारण पूछा। बालक ने उत्तर दिया—मैंने संसार की समस्त लीला देख ली है और अब मैं भगवान् की लीला देखना चाहता हूं, इसलिए मुसकरा रहा हूं। बादशाह बालक की रहस्यात्मक भाषा को नहीं समझ सका इसलिए उसको अपनी बात स्पष्ट करने का संकेत किया।

बालक ने कहा—इस संसार में तीन बातों की अपेक्षा की जाती है—मां-बाप से प्यार की, न्यायाधीश से न्याय की और राजा से संरक्षण की। मां-बाप की ममता वैभव की ओट में विलीन हो गई। उन्होंने मुझे धन के लोभ में बेच दिया। न्यायाधीश ने बिना अपराध मृत्युदण्ड दे दिया और राजा भी अपने तुच्छ स्वार्थ के लिए संरक्षण के दायित्व को भूल गया। अब मैं रोऊं तो किसके सामने! कोई भी तो इस स्वार्थ की दुनिया में मेरे रोने को सुनने वाला नहीं है। इसीलिए मैं हंस रहा हूं और भगवान् की लीला देखना चाहता हूं कि उसके दरबार में न्याय है या नहीं।

एक अबोध बालक का यह तीखा व्यंग्य सुनकर बादशाह अवाक् रह गया। उसने बच्चे को अपनी गोद में उठा लिया और कहा—मेरे प्राण जाएं तो जाएं, मुझे कोई चिन्ता नहीं। मैं अपने प्राणों के लिए ऐसा अन्याय नहीं करूंगा।

आलस्य

एक मनुष्य आम-वृक्ष की छाया में लेटकर विश्राम कर रहा था। सहसा हवा के वेग से एक आम टूटकर उसके पेट पर गिर पड़ा। आम खाने के लिए उसके मुंह में पानी भर आया, किन्तु उसका हाथ आम लेने के लिए नहीं उठा। उधर से एक घुड़सवार चला जा रहा था। लेटे हुए उस व्यक्ति ने कहा—ठाकुर साहब ! मेरे पेट पर जो आम पड़ा है, कृपया उसे मेरे मुंह में रख दो।

ठाकुर साहब कुछ कहे, इससे पहले एक दूसरा व्यक्ति जो पास में ही सो रहा था, बोला—महाशय ! आप अपना काम करें। इसके कहने से आम उठाकर इसके मुंह में मत निचोड़ना। क्योंकि यह महा आलसी है। अपने पेट पर पड़े हुए आम को तो मुंह में धरे ही क्या सारी रात मेरे मुंह को कुत्ता चाटता रहा तो भी यह उसे दूर न कर सका। आगन्तुक व्यक्ति उन दोनों के आलस्य पर हंसता हुआ आगे निकल गया।

साच बोल्यां मां मारै

माता अपने पुत्र को आदर्श व्यक्ति वनाना चाहती थी। उसके जीवन का आलम्वन एकमात्र वही पुत्र था। वह उसके खान-पान, अध्ययन आदि सव प्रवृत्तियों का पूरा ध्यान रखती और समय-समय पर उसे सत्यनिष्ठ रहने की हिदायत देती रहती।

लड़के ने कई वार माता की शिक्षा सुनी। और सव वातें तो ठीक पर सत्य वोलना वड़ी कठिन वात है; यह सोचकर उसने कहा—मां! तुम्हारी सव वातें मुझे मान्य हैं पर सच वोलना ठीक नहीं है। माता ने कहा—पुत्र! 'सांच को आंच नहीं। कुछ भी हो, सत्य पर परदा नहीं डालना चाहिए। पुत्र वोला—मां! मैं तुम्हारा अनादर तो नहीं करता पर एक वात में मुझे संदेह है कि मैं सत्य वोलूंगा तो तुम भी मुझे मारने आओगी। माता ने कहा—नहीं वेटा! यह कभी हो नहीं सकता।

तो मां! मैं अपने मन की वात कह दूं?—पुत्र ने अनुमति मांगी। मां ने अनुमति दी तो पुत्र वोला—मां! मैं आज तुमसे एक वात पूछना चाहता हूं। तुम और मैं सभी जानते हैं कि मेरे पिताजी को गुजरे कितना समय हो गया है। अव तुम यह शृङ्गार किसलिए करती हो?

अपने पुत्र के ये शव्द सुन मां हाथ में छड़ी लेकर उसको मारने दौड़ी। पुत्र पहले से ही सजग था। वह वहां से भाग गया। काफी देर वाद जव वह लौटा, मां का आवेश समाप्त हो चुका था। उसने सम्वोधित कर कहा—मां! तुम मुझे कितना प्यार करती हो? छड़ी तो दूर की वात है, कभी हाथ भी उठाना नहीं चाहती। पर आज सच वोला तो तुम मुझे मारने दौड़ी। 'सत्य वोलने पर मां मारती है।' यह कहावत मुझे एकदम सही जान पड़ती है।

मूर्ति और घोड़ा

एक कलाकार ने स्वर्ण की दो वस्तुएं तैयार कीं। एक था स्वर्ण का घोड़ा और एक थी भगवान् कृष्ण की मूर्ति। वह उसे बेचने के लिए एक स्वर्णकार के पास पहुंचा। मूर्ति छोटी थी, घोड़ा बड़ा था इसलिए स्वर्णकार ने मूर्ति का मूल्य किया पचीस हजार और घोड़े का एक लाख रुपया। कलाकार इस बात पर झल्ला उठा। मूर्ति का मूल्य कम करना वह अपने भगवान् कृष्ण का अपमान समझ रहा था। झगड़ पड़ा स्वर्णकार से। स्वर्णकार ने शांति से समझाया—भाई, मैं न भगवान् का मूल्य करता हूं और न ही घोड़े का, मैं तो सोने का मूल्य करता हूं। घोड़ा बड़ा है, मूर्ति छोटी है, फिर मैं मूर्ति का मूल्य अधिक कैसे कर सकता हूं। कलाकार कैसे समझे इस बात को? क्योंकि वह भगवान् का परम भक्त था। उसका अपना आग्रह रहा कि नहीं, मूर्ति का मूल्य तो अधिक होना ही चाहिए।

एक समझदार व्यक्ति वहां आया। वह जैन दर्शन का मर्मज्ञ था। अनेकान्त का ज्ञाता था। दोनों को झगड़ते हुए देखकर उसने कहा—भाई, व्यर्थ में ही क्यों झगड़ रहे हो। तुम दोनों ही ठीक कह रहे हो। तुम्हारी अपेक्षा से यह मूर्ति भगवान् है इसलिए इसका अधिक मूल्य है किन्तु स्वर्णकार की दृष्टि में सोने का मूल्य है। जिस वस्तु में सोना अधिक है वही अधिक कीमती है। इसलिए इसके अभिमत से घोड़े का मूल्य अधिक है।

अपेक्षा भेद को ठुकराने से सत्य को नहीं पाया जाता। वस्तु को जानने, देखने और समझने की विभिन्न दृष्टियां होती हैं। हर व्यक्ति वस्तु को अपनी दृष्टि से देखने का प्रयत्न करता है, तब समस्या खड़ी होती है। अपेक्षा भेद का दृष्टिकोण सामने आते ही सारी समस्याएं समाहित हो जाती हैं।

करनी का फल

युवा सम्राज्ञी अपने शहर के एक युवक के प्रति आकृष्ट हो गई। वह प्रतिदिन अपने गवाक्ष में बैठकर उस युवक की प्रतीक्षा करती। जब वह महल के नीचे से गुजरता तो वह अनिमिष नयनों से उसे तब तक देखती रहती जब तक वह आंखों से ओझल नहीं हो जाता।

एक दिन युवक ने आंखें ऊपर उठायीं। महारानी उसकी ओर देख रही थी। दोनों की आंखें मिलीं, युवक सहमा और उसने आंखें झुका लीं। उसने दूसरी बार ऊपर देखा, महारानी उसी मुद्रा में नीचे झांक रही थी। उसकी आंखों में संकेत था और संकेत में था आमन्त्रण। युवक अभिभूत हो गया। अब वह एक से अधिक बार उस पथ से गुजरने लगा।

सम्राज्ञी और वह युवक मानसिक दृष्टि से काफी निकट आ गये। अब वे दोनों मिलन के लिए आतुर हो रहे थे, पर कोई उपाय कारगर नहीं हो रहा था।

उस नगर की मालिन फूला राजा की विश्वासपात्र थी। वह फूलों की टोकरी लेकर प्रतिदिन अन्तःपुर में जाती। वह युवक मालिन से मिला और बोला—मुझे जैसे-तैसे महारानी के पास पहुंचा दो। मैं तुम्हें मुंहमांगा इनाम दूंगा। मालिन लोभ में आ गई। उसने कहा—रनिवास में जाने का रास्ता राजसभा के बीच से है। इसलिए वहां पहुंचना सहज बात नहीं है। हां, यदि तुम मेरे कपड़े पहनकर मेरी पुत्रवधू के रूप में मेरे साथ चलो तो काम हो सकता है। वह व्यक्ति इसके लिए तैयार हो गया।

मालिन ने उस व्यक्ति को अपने वस्त्र पहनाए और उसके सिर पर फूलों की डलिया रख दी। राजमहल में पहुंचने के लिए वह राजा के आगे से गुजरी। राजा ने उसे टोका—यह तुम्हारे साथ कौन है? मालिन बोली—महाराज! यह मेरी पुत्रवधू है। इतने दिन मैं सारा काम अकेली देखती थी, अब बूढ़ी हो गई हूं। इसे साथ में रखने से मेरा काम हल्का हो जाएगा और यह काम सीख लेगी।

राजा ने उसको रोका नहीं, पर वह उसके प्रति संदिग्ध अवश्य हो गया। फूला ने उसको महारानी से मिला दिया। वापस लौटते समय ज्यों ही वह राजा के निकट

से गुजरा, उसका पांव जोर से टिका। राजा के मन में जगा हुआ संदेह फिर उभरा। उसने अपने सचिव को उनके पीछे जाकर पूरी जानकारी करने का निर्देश दिया।

सचिव के द्वारा संकेतित व्यक्तियों ने उनका पीछा किया। मालिन के घर पहुंचकर जब उस व्यक्ति ने अपना मुंह खोला तो गुप्तचरों ने उसको पकड़ लिया और राजा के सामने उपस्थित किया।

राजा ने सारी स्थिति का अध्ययन कर महारानी को दंडित किया, फूला मालिन को दंडित किया और उस धूर्त व्यक्ति को दंड देने का निर्देश देते हुए कहा—इसका मुंह काला करो, पैर नीले करो, सिर के बाल कटवाओ, पर पांच शिखा (चोटी) रख दो। गधे पर सवारी कराओ और कोतवाली के चबूतरे पर रखे हुए सवा हाथ के जूते से इसको पीटते हुए सारे शहर में घुमाओ, उसके बाद इसे फांसी दो।

अपराधियों ने अत्यन्त चातुर्य से अपना काम बनाने का प्रयास किया था, पर उनकी पोल खल गई और सबको अपने किए का फल मिल गया।

महान् आश्चर्य

गरीब मां का इकलौता बेटा संगम बच्चा ही था। न खाने को पूरी रोटी मिलती थी और न पीने को पानी। एक दिन उसने किसी पड़ोस के बच्चे को खीर खाते देख लिया। मां के पास आकर रोने लगा—मां, मैं भी आज खीर खाऊंगा। मां ने कहा—बेटा, खीर कहां से लाऊं ? बड़ी मुश्किल से दूसरों के घर चक्की पीसकर दोनों का पेट पालती हूं। मां समझाकर हार गई, पर बच्चा नहीं माना। बाल-हठ बलवान होता है। खीर न मिलने के कारण बच्चा जोर-जोर से रोने लगा। पड़ोसिन ने बच्चे के रोने का कारण पूछा।

मां ने कहा—मैं तंग आ गई इसे समझाते-समझाते, इसने जिद्द पकड़ रखी है खीर खाने की। कहां से लाऊं खीर, जबकि रोटी ही पूरी नसीब नहीं है।

पड़ोसिन बहुत भली थी। उसने सोचा—बच्चे का मन नहीं तोड़ना चाहिए। उसने खीर बनाने की पूरी सामग्री—दूध, चीनी, चावल आदि बच्चे की मां को दे दी। मां ने खीर बनाकर बालक को आवाज दी—आओ बेटे ! खीर तैयार है। बालक तो प्रतीक्षा कर ही रहा था। तत्काल दौड़ता हुआ आया, मां ने खीर से थाली भर दी और कहा—बेटा, जी भरकर खीर खालो, मैं जरा पानी लेने बाहर जाती हूं।

मां चली गई। बच्चा बैठा है। खीर की थाली सामने पड़ी है। ज्योंही बच्चा खाने को उद्यत होता है, सामने से एक तपस्वी मुनि आते हुए दिखायी दिए। न जाने बच्चे के मन में क्या भावना जगी। वह सोचने लगा, कितना अच्छा हो यदि मैं यह खीर तपस्वी मुनि को अपने हाथ से दे दूं। मुनि के मासखमण की तपस्या थी। वे भिक्षा के लिए घूमते हुए संयोगवश उसी झोंपड़ी के पास आ गए।

बालक संगम खुशी से झूम उठा, मुनिवर से निवेदन करने लगा—मुनिवर ! मेरी कुटिया में पधारें और मेरे हाथ से भिक्षा लेकर मुझे कृतार्थ करें। खीर शुद्ध है, मेरे खाने के लिए बनायी गई है। आप इसे ग्रहण करें।

मुनि उस बालक की भावधारा को देख रहे थे, पढ़ रहे थे उसकी मुखमुद्रा को। बालक का आग्रह देखकर मुनि ने कहा—तुमने इसके लिए अपनी मां से पूछ

लिया है क्या ?

—मां से क्या पूछूं ? खीर तो मेरे लिए ही बनी है। आप इसकी चिन्ता न करें, जल्दी से पात्र निकालें। मुनि ने ज्योंही पात्र निकाला, बालक ने मुनि के मना करने पर भी सारी खीर पात्र में उंडेल दी। कितने ऊंचे परिणाम और कितने ऊंचे अध्यवसाय ! जन्म-जन्मान्तरों के सोये संस्कार जग गए। सोचने लगा—मैं आज तर गया। ये मुनि संसार-समुद्र से पार पहुंचाने वाली नौका हैं। मैं कितना सौभाग्यशाली हूं। आज सचमुच कृतार्थ हो गया। खीर के लिए मचलने वाला वह बालक मुनि को खीर देकर इतना प्रसन्न था जितना कि वह खीर पाने पर भी नहीं हुआ था।

मुनि भिक्षा लेकर चले गए। इधर मां आयी। उसने देखा—पुत्र थाली चाट रहा है। मां की आंखों में आंसू आ गए। वह सोचने लगी—मैं कितनी अभागिन हूं। मेरा पुत्र इतनी खीर खाकर भी अभी भूखा है। अब भी यह थाली चाट रहा है। इसका अर्थ यह हुआ कि मैं हमेशा इसे इतना भूखा रखती हूं।

बालक संगम ने मुनि को क्षीर का दान देने की बात अपनी मां के सामने नहीं बताई, क्योंकि उसे प्रदर्शन तो करना नहीं था। यही बालक संगम अपने इस महान् त्याग से अगले जन्म में असीम वैभव का स्वामी कुमार शालीभद्र हुआ।

पेटभर भोजन कर लेने के बाद बची हुई वस्तु का दान देना एक बात है, लेकिन स्वयं भूखे रहकर उत्कृष्ट भूख से दान देना बहुत महत्त्वपूर्ण बात है। बालक संगम का यह अन्नदान एक उत्कृष्ट कोटि का कहा जा सकता है और उसकी अवस्था देखते हुए इस घटना को एक महान् आश्चर्य के रूप में माना जा सकता है।

अहं का नाग

एक दीन-हीन व्यक्ति सड़क के किनारे बैठा कराह रहा था। उसके शरीर के रोम-रोम से पीप झर रहा था और वहां मक्खियां मंडरा रही थीं। उस सड़क से गुजरने वाला हर राही अपनी नाक पर रूमाल रख रहा था, क्योंकि उसके शरीर का स्पर्श पाकर वायु भी दुर्गन्धमय वन रही थी।

एक अमीर व्यक्ति अपनी अमीरी से गर्वोन्नत मस्तक किए उसी सड़क से आ रहा था। उसके शरीर से इत्र की सुगंध फूट रही थी। किसी अछूत की छाया भी उसे लग जाए तो तीन वार स्नान करता था। ज्योंही अमीर युवक की दृष्टि उस भिखारी पर पड़ी उसके नाक-भौं सिकुड़ गये और सहसा उसके मुख से ये शब्द निकल पड़े— हे भगवान्! ऐसे व्यक्तियों के जीने का क्या प्रयोजन है? क्या तेरे घर में भी कोई अंधेर है जो ऐसे व्यक्तियों को उठा नहीं लेता।

ये अहं भरे शब्द दीन के कानों को वेध गये। वोलने की क्षमता न होते हुए भी उसका स्वाभिमान जाग उठा और उसने अपनी शक्ति को वटोरते हुए कहा— महाशय! आपने बहुत ठीक कहा है। मुझ जैसे प्राणियों का इस धरती पर जीने का कोई प्रयोजन नहीं। सचमुच हमारा जीवन भारभूत है। भगवान् ने हमारी प्रार्थना सुनी होती तो हम कव के यमलोक के अतिथि वन जाते। पर भाई साहव! एक विशेष प्रयोजन से हमें यहां छोड़ा है।

—अच्छा, तुम्हारे जीने का क्या कोई प्रयोजन भी है? यह नारकीय जीवन और फिर भी सोद्देश्य? वता, क्या प्रयोजन है तुम्हारे जीवन का? अभिमान के साथ युवक ने पूछा।

—महाशय! आप वुरा न मानें। हम इसलिए जी रहे हैं कि हमें देखकर आप जैसे व्यक्तियों का अहं दूर होता रहे। आपको भी यह सोचने का अवसर मिले कि कभी हमारी भी यह स्थिति हो सकती है।

अहं का नाग जिस व्यक्ति को डस लेता है उसके मन और प्राणों में विषमता का विष व्याप्त हो जाता है। वह विष उस व्यक्ति के चेतना के साथ-साथ मानव समाज की चेतना को भी मूर्च्छित करता रहता है।

आवश्यकता और आकांक्षा

एक किसान गरीबी से पीड़ित था। दिन-रात श्रम करके मुश्किल से अपनी उदर-पूर्ति कर पाता था। एक दिन उसने सुना कि राजा अपने जन्मदिन पर मुंहमांगा इनाम देता है। जो भी मांग वहां की जाती है, पूरी कर दी जाती है। क्यों न मैं भी वहां जाऊं और अपनी गरीबी को दूर करूं। इस चिन्तन के साथ उसके कदम प्रातःकाल ही राजदरबार की ओर बढ़ चले। फटे-पुराने चिथड़ों में लिपटा हुआ वह नंगे पैर चलकर राजदरबार में पहुंचा।

राजा ने पूछा—क्या चाहता है? वह दीनता के साथ बोला—राजन्! मैं एक भूमिहीन किसान हूं। आपकी कृपा से थोड़ी भूमि मिल जाए तो निहाल हो जाऊं। राजा ने उदारता के साथ कहा—मांग, जितनी चाहता है।

अब क्या था! लालसा का धागा लम्बा होता चला गया। कितनी मांगूं? कैसे मांगू? क्या सचमुच राजा मुझे उतनी भूमि दे सकेगा जितनी मैं याचना करूंगा। इसी उधेड़बुन में आधा घंटा व्यतीत हो गया।

राजा ने एक उपाय सुझाते हुए कहा—कल सूर्योदय होते ही तुम यहां से चलो। जितनी दूर चलकर संध्या तक पुनः यहां पहुंच सको उतनी भूमि तुम्हें मिल जायेगी। किसान की खुशी का पार न था। भविष्य के स्वप्न आंखों में तैरने लगे—अब मैं करोड़पति बन जाऊंगा। बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएं झुक जाएंगी, नौकरों से घर भर जाएगा, इस प्रकार की महत्त्वाकांक्षा ने उसे रात भर नींद नहीं लेने दी।

प्रातःकाल होते ही दो राजकर्मचारियों के साथ उसके पैर अपनी लक्ष्यपूर्ति की ओर आगे बढ़े। शरीर से वह हृष्ट-पुष्ट था। दौड़ना शुरू किया तो दौड़ता ही चला गया। न भूख सताई, न प्यास और न ग्रीष्म की चमचमाती धूप। चलता-चलता वह पचास-साठ मील का रास्ता पार कर गया। संध्या के चार बज चुके थे। अब पैर थक गये और सांस फूलने लगी। वहीं अपनी विजय की कील रोपकर वह पुनः मुड़ा, पर अब कहां रही पैरों में वह ताकत? प्यास के कारण उसका कंठ सूख गया। भूख सताने लगी। शरीर से पसीना चूने लगा। पैर उठाने पर भी

नहीं उठ रहे थे। इधर दिन बहुत कम रह गया था। नियत स्थान पर पहुंचना था। हिम्मत पस्त हो जाने पर भी उसने दौड़ने की कोशिश की पर आधी दूर भी पुनः नहीं आ सका कि चलते-चलते गिर पड़ा। वह वहीं बेहोश हो गया और देखते-ही-देखते यमलोक का अतिथि बन गया।

राजकर्मचारियों से सूचना पाकर राजा स्वयं वहां पहुंचा। उसे पड़ा हुआ देखकर राजा के मुंह से निकला—हाय ! लोभ की नागिन इसे डस गई। मनुष्य को मात्र साढ़े तीन हाथ की जमीन चाहिए पर उसकी लालसा आकाश से भी विशाल हो जाती है।

इस सन्दर्भ में शास्त्रकारों ने कहा—छलनी को पानी से भरा जा सकता है पर आकांक्षाओं की पूर्ति कभी नहीं हो सकती। फिर भी इस छोटे से जीवन में मनुष्य कितनी लालसा और कितनी महत्त्वाकांक्षा कर लेता है।

बालक और सेठ

प्राचीन समय में यातायात के साधन बहुत कम थे। उस समय लम्बी यात्रा करने वाले व्यक्ति सार्थ लेकर जाते थे। एक रईस व्यक्ति जलयान के द्वारा विदेश-यात्रा पर जा रहा था। उसने अपने शहर में घोषणा करवाई कि सेठजी यात्रा पर जा रहे हैं, कोई उधर जाना चाहे उसकी व्यवस्था सेठजी की तरफ से हो जाएगी। घोषणा सुनकर कई व्यक्ति आए और सेठजी के सार्थ में सम्मिलित हो गए।

कुछ व्यक्ति एक अनाथ बालक को लेकर सेठ के पास आए और बोले—सेठ साहब ! अपने घर में यह बच्चा अकेला है। माता-पिता की मृत्यु के बाद परिवार में कोई इसको संभालने वाला नहीं है। अपने समाज का लड़का है। रोटी का मोहताज बन रहा है। आप संभाल लें तो इसको आश्रय मिल जाए।

सेठ ने लड़के को देखा। फटेहाल होने पर भी उसकी आंखों में चमक थी। सेठ ने उसको अपने पास रख लिया। नहलाने और अच्छे वस्त्र पहनाने के बाद उसका रूप-रंग भी निखर गया। अच्छा भोजन, अच्छा वातावरण, वरिष्ठ व्यक्तियों का सम्पर्क और सेठ का स्नेह बालक के व्यक्तित्व को उभारने लगा। बुद्धि उसकी अच्छी थी। सेठ के निर्देशानुसार वह व्यापार सीखने लगा। थोड़े ही दिनों में वह एक कुशल व्यवसायी बन गया। उसके आने के बाद सेठ के व्यापार में उत्तरोत्तर लाभ होता रहा, इससे सेठ के मन में बालक के प्रति आत्मीय भाव विकसित होता गया।

सेठ ने उस अनाथ बालक को अपने व्यापार में भागीदार बना लिया। पहले उसकी दो आना पांती रखी, फिर चार आना रखी और बाद में आधी पांती रख दी। अब वह बराबर का सेठ हो गया और बालक से युवा बन गया। एक दिन उसने अपने घर और परिवार के बारे में जिज्ञासा की। उसे बताया गया कि उसका छोटा-सा घर अमुक शहर में है, पर परिवार में कोई नहीं है। उसके मन में घर संभालने की भावना जागी। सेठ के पास जाकर उसने अपने घर जाने की अनुमति मांगी। सेठ बोला—यह घर तुम्हारा ही है, तुम्हारी इच्छा हो तो यहीं रहो। युवक ने कहा—आपकी कृपा ही मेरा जीवन है, यहां रहने

आपत्ति नहीं है, पर मैं सोचता हूं कि पुरखों का नाम रह जाए तो अच्छा है।

युवक की आन्तरिक इच्छा देख सेठ ने उसे देश जाने की अनुमति दे दी और कहा—पूरा हिसाब कर लो। युवक बोला—हिसाब किससे कर लूं? आप मेरे लिए मां-पिता सब कुछ हैं। अपने हाथ से उठाकर जो देंगे, मैं उसमें खुश हूं। सेठ ने उसको सम्पदा और सम्मान के साथ विदा किया। शहर पहुंचकर उसने घर के बारे में पूछताछ की। एक-दो दिन में सारी व्यवस्था करके उसने बाजार में लोगों को इकट्ठा कर कहा—मेरे पिताजी पर किसी का ऋण हो, वह ब्याज सहित ले ले। कई व्यक्ति आए और उन्होंने अपना हिसाब पूरा किया। युवक की दूसरी घोषणा थी कि किसी भी व्यक्ति पर मेरे पिता का ऋण हो, वे अपना ऋण चुका दें।

युवक के सौहार्द की छाप लोगों पर पड़ चुकी थी अतः कर्जदार व्यक्ति भी आए और बोले—बाबू! बहुत वर्ष हो गए। हम ब्याज नहीं दे सकते। कुछ व्यक्ति मूल लौटाने में भी कठिनाई अनुभव कर रहे थे। युवक ने उन सबसे कहा—मुझे पिछला हिसाब पूरा करना है। आपके पास हों तो दें अन्यथा सब-कुछ माफ। युवक ने उदारतापूर्वक सबको माफ कर दिया। अब उसने अपने टूटे-फूटे मकान को तुड़वाकर दूसरा मकान बनवा लिया और पूरी व्यवस्था के साथ रहने लगा। शहर में उस युवक और उस सेठ की सहृदयता बहुत दिनों तक चर्चा का विषय बनी रही।

सेठ ने एक अनाथ बालक को जो स्नेह, सौहार्द और अपनत्व दिया तथा रंक से रईस बना दिया वह उल्लेखनीय है। ऐसी घटनाएं कभी-कभी ही घटित होती हैं।

काम-कलश

एक विद्याधर आकाश-मार्ग से यात्रा कर रहा था। रास्ते में उसे अतिसार की बीमारी हुई। स्वास्थ्य-लाभ के लिए वह नीचे उतरा। कई व्यक्ति उधर से गुजरे पर किसी ने विद्याधर की ओर ध्यान नहीं दिया। आखिर एक गरीब व्यक्ति ने उसको देखा। वह उसे अपनी झोंपड़ी में ले गया और आवश्यक परिचर्या में जुट गया।

विद्याधर बेहोश हो चुका था। जब उसे होश आया तो उसने देखा—एक अपरिचित व्यक्ति अग्लान-भाव से उसकी सेवा में संलग्न है। विद्याधर अतिसार और भूख के कारण व्यथित हो रहा था। उसने अपना झोला खोला। उसमें से एक कलश निकाला। उसे पट्ट पर रखकर पूजा की और घी के साथ अच्छी तरह पकी हुई खिचड़ी की मांग की। मांग के साथ ही घी-खिचड़ी तैयार। विद्याधर ने थोड़ी खिचड़ी खायी और अपने उपकारी व्यक्ति को भरपेट खिलाई।

विद्याधर उस अपरिचित व्यक्ति की सेवा-भावना पर बहुत प्रसन्न था। वह बोला—भाई ! तुमने मेरी इतनी सेवा की है, कोई वरदान मांग लो। गरीब व्यक्ति उस 'काम-कलश' के जादू को देखकर उसके प्रति आकृष्ट हो रहा था। अब जब उसे वरदान मांगने को कहा गया तो उसने उसी को मांग लिया। विद्याधर ने उसे बहुत समझाया कि मैं तुम्हें ऐसा मंत्र सिखा दूंगा जिससे ऐसे घड़े बनाए जा सकते हैं, लेकिन वह नहीं माना। आखिर विद्याधर उसे काम-कलश देकर अपनी मंजिल की ओर चल पड़ा।

विद्याधर को विदा कर उस व्यक्ति ने काम-कलश की पूजा की और अपनी मांगें प्रस्तुत कीं। मांग के अनुरूप उसे भोजन, मकान, ऐश्वर्य—सब-कुछ मिला। गरिष्ठ भोजन ने उसे उन्मत्त बनाया। अब उसने शराब की मांग की। शराब पीने के बाद नर्तकी का नृत्य देखने की इच्छा हुई। नर्तकी नाचने लगी, पर नृत्य उसे पसन्द नहीं आया। वह बोला—तुम ठहरो, मैं नाचता हूं। काम-कलश को सिर पर रखकर उसने नृत्य करना शुरू किया। हाथ का आलम्बन छूटते ही कलश नीचे

गिर पड़ा और चूर-चूर हो गया। कलश फूटा और सारी लीला समाप्त। अब वह अपनी उसी छोटी-सी झोंपड़ी के अभावग्रस्त परिवेश में खड़ा था। अनुताप से भरे मन और आंसुओं से भरी आंखों से वह अपने उस अतीत का दर्शन कर रहा था जो उसे क्षणिक सुख की अनुभूति देकर विलुप्त हो गया।

रूढ़ि कैसे बनती है

घर में शादी का प्रसंग था। एक पालतू बिल्ली इधर से उधर चक्कर काट रही थी। मंगल-प्रसंगों पर बिल्ली की उपस्थिति शुभ नहीं मानी जाती। गृह-स्वामिनी ने उसको एक ओर ले जाकर बांध दिया। नवोढ़ा वधू ने यह सब देखा और सोचा—'हमारे यहां की परम्परा ऐसी होगी।' कुछ समय बाद गृह-स्वामिनी का देहावसान हो गया। घर में दूसरी बार शादी का प्रसंग आया। वधू ने सास का अनुकरण कर एक बिल्ली मंगवाई और बांधकर रखी। दो-चार प्रसंगों पर ऐसा होने के बाद उस परिवार में वैसी परम्परा पड़ गई। एक बार निकट सम्बन्धियों में से कोई बुजुर्ग वहां थे। शादी के अवसर पर बिल्ली पकड़कर मंगाने की बात सामने आयी तो वे बोले--- 'यह किसलिए?' 'अपने परिवार की यही परंपरा है। यह क्यों है, इससे अधिक आप जान सकते हैं।' बुजुर्ग भाई ने कहा—'मैंने तो ऐसी परम्परा कभी नहीं देखी, ऐसा कब से चल रहा है?' 'अमुक भैया की शादी से तो हम बराबर देख रहे हैं। पहले माताजी ऐसा करती थीं और अब भाभी जी करती हैं।' परिवार के एक सदस्य के ऐसा कहने पर वे बोले—'तुम्हारी माताजी के समय जो शादी हुई थी, उस समय मैं स्वयं यहां था। मैंने ऐसी कोई परम्परा की बात नहीं सुनी। हां, बिल्ली के आने से किसी प्रकार का अपशकुन न हो इस दृष्टि से तुम्हारी माताजी ने अपनी पालतू बिल्ली को बांधा अवश्य था।' यह सुनकर कोई भी हंसी नहीं रोक सका। समझ के अभाव में परिस्थिति विशेष में की गई प्रवृत्ति एक रूढ़ि का रूप ले लेती है और उसका प्रतिकार न हो तो वह हजारों-हजारों वर्षों तक कुल-परम्परा के रूप में मान्य होकर चलती है।

विचित्र परीक्षण

एक ब्राह्मण के तीन लड़कियां थीं। शादी के वाद मेरी लडकियां सुखी रहें, ऐसी व्यवस्था करने के लिए मां ने बड़ी लड़की से कहा—'आज तुम पहली बार सुसराल जा रही हो। जब तुम्हारा पति कमरे में आए तो तुम कोई गलती बताकर उसके सिर पर पाद-प्रहार कर देना। उसके वाद जो स्थिति हो, मुझे वताना।' पुत्री ने वैसा ही किया। उसका पति मधुर शब्दों में वोला—'प्रिये! मेरे कठोर सिर से तुम्हारे कोमल पांव में पीड़ा तो नहीं हुई?' इसके साथ ही पांव अपने हाथ में लेकर सहलाने लगा; पुत्री ने सारी घटना अपनी माता को वतला दी। मां ने कहा—'पुत्री! घर में तुम्हारा ही राज है, जैसा चाहो करो।'

माता के कथनानुसार दूसरी लड़की ने भी वैसा ही किया। उसके पति ने थोड़ा-सा गुस्सा करके कहा—'क्या यह काम शिष्ट व्यक्तियों के योग्य है?' लड़की ने माता के सामने सारी स्थिति रख दी। सुनकर वह वोली—'तुम्हारा पति थोड़ी देर के लिए नाराज होगा और कुछ नहीं करेगा। तुम भी थोड़ी-सी सावधानी के साथ इच्छानुसार घर में रहो।'

तीसरी लड़की का पति इस आकस्मिक अपमानजनक घटना से उत्तेजित हो उठा। वह वोला—'कैसा अनुचित और अशिष्ट व्यवहार है तुम्हारा? क्या तुम कुलीन हो!' आक्रोश प्रकट करने के वाद पीटकर उसे घर से वाहर निकाल दिया। माता ने इस घटना की जानकारी प्राप्त कर कहा—'पुत्री! तुम्हारे पति की सेवा वहुत कठिन है। तुम उसे देवता मानकर अप्रमत्त भाव से उसकी आराधना करो और सुखपूर्वक रहो।' अपनी पुत्री को यह निर्देश देकर वह जामाता के पास गई और वोली—'पुत्र! यह हमारी कुल-परम्परा है। तुम बुरा मान गए। तुम्हारे प्रति उसका यह व्यवहार हो ही कैसे सकता है?' इस प्रकार समझाकर उसे मना लिया।

मेघकुमार

मेघकुमार अपने साधु-जीवन की प्रथम रात्रि में ही मानसिक उद्वेलन से पराभूत हो गया। वह घर जाने की अनुमति लेने के लिए भगवान् महावीर के पास पहुंचा। भगवान् उसकी मनःस्थिति से अवगत थे। उन्होंने अपने नवदीक्षित शिष्य को सम्बोधित कर कहा—'मेघ इतनी-सी छोटी बात में यह कायरता, क्या तुझे अपना पिछला जन्म याद नहीं है? मेरुप्रभ हाथी के भव में तुमने जंगल की दावाग्नि से बचने के लिए चौड़े क्षेत्र को निस्तृण बना डाला था। जंगल में आग लगी। हवा के झोंकों से आग आगे बढ़ी। जंगल के पशु बचाव के लिए उस क्षेत्र में इकट्ठे होते जा रहे थे। वह लम्बा-चौड़ा मैदान इस प्रकार भर गया था कि एक पांव रखने के लिए भी स्थान नहीं रहा। तुमने खाज करने के लिए पैर ऊपर उठाया त्यों ही एक खरगोश वहां आकर बैठ गया। तुमने पैर नीचे रखना चाहा, पर खरगोश को देखकर सोचा—जमीन पर पांव रखूंगा तो यह खरगोश कुचलकर मर जायेगा। इससे मेरी आत्मा पाप से भारी हो जाएगी। अहिंसा की विशुद्ध प्रेरणा से तुम तीन पैरों के बल खड़े रहे। आग शान्त हुई, पशु जंगल में गए। स्थान खाली देखकर तुमने पैर नीचे टिकाना चाहा, पर टिक नहीं सका। ढाई दिन तक अधर में रहने के कारण पांव इतना अकड़ गया था कि तुम नीचे गिर पड़े और तुम्हारा प्राणान्त हो गया। मेघ! तुम्हारी वह कष्ट-सहिष्णुता आज कहां चली गई?'

मेघकुमार ने जाति-स्मृति ज्ञान के आलोक में अपना पिछला जन्म देखा। प्रतिबुद्ध हुआ और पुनः संयम में सुस्थिर हो गया।

धर्मरुचि अनगार

धर्मघोष नामक आचार्य चम्पानगरी आए। उनके शिष्य-परिवार में धर्मरुचि अनगार तपस्वी मुनि थे। एक मास की तपस्या के पारणे में आचार्य की आज्ञा से भिक्षा लेने के लिए गए। घूमते-घूमते वे नागश्री ब्राह्मणी के घर पहुंचे। नागश्री ने उस दिन भोजन सामग्री में तुम्बे का शाक बनाया। शाक चखने पर उसे भान हुआ—यह तो कड़वा तुम्बा है। खाने के योग्य नहीं है। वह उसे कूड़ेघर पर डालने के लिए बाहर निकली। सामने मुनि को देखकर, पता नहीं किस द्वेषभाव से प्रेरित होकर उसने वह शाक मुनि को भिक्षा में दे दिया।

मुनि धर्मरुचि भिक्षा लेकर आचार्य के पास पहुंचे। आचार्य ने शाक देखकर कहा—यह कड़वा तुम्बा है। इसे खाने से मृत्यु हो सकती है। तुम बाहर जाओ, इस शाक को एकान्त निरवद्य स्थान में विसर्जित कर दो। मुनि एकान्त स्थान में पहुंचे। शाक की एक-दो बूंदें नीचे गिरीं। उसकी सुगन्ध से सैकड़ों चींटियां वहां एकत्रित हो गईं और मर गईं। मुनि ने सोचा—सारा शाक विसर्जित करूंगा तो पता नहीं कितनी चींटियों की हिंसा होगी? इस चिंतन के साथ ही वह सारा शाक उन्होंने खा लिया, शरीर में विष का प्रभाव बढ़ते देख मुनि ने आजीवन अनशन स्वीकार कर लिया। अनशनकाल में तीव्र वेदना का अनुभव हुआ। उस वेदना को समभाव से सहन कर आयुष्य पूर्ण होने पर वे सर्वार्थ-सिद्ध अनुत्तर विमान में देवरूप में उत्पन्न हुए।

जिनरक्षित और जिनपाल

चम्पानगरी में माकन्दी सार्थवाह के दो पुत्र थे—जिनरक्षित और जिनपालित। दोनों भाइयों ने ग्यारह बार लवण समुद्र की यात्रा कर अपने व्यापार को विस्तार दिया। बारहवीं बार वे फिर यात्रा करने के लिए उद्यत हुए। माता-पिता ने निषेध किया, पर वे नहीं माने और समुद्र-यात्रा के लिए निकल पड़े।

समुद्र में भयंकर तूफान आया। उनका जहाज टूट गया। टूटे हुए काष्ठखंड के सहारे तैरते हुए वे 'रत्नद्वीप' नामक स्थल पर जा पहुंचे। उस द्वीप की स्वामिनी रयणादेवी ने उनको आश्रय दिया। दोनों भाई उस देवी के साथ रहने लगे।

एक दिन लवण समुद्र के अधिष्ठायक सुस्थित देव की आज्ञा से रयणादेवी समुद्र की सफाई करने गई। जाते समय उसने दोनों भाइयों से कहा—दक्षिण वन-खंड को छोड़कर जहां चाहो भ्रमण करो, मैं थोड़ी देर में लौटकर आ रही हूं। दोनों भाई घूमते-घूमते दक्षिण दिशा में पहुंचे। उन्होंने सोचा—इस वन-खंड में जाने का निषेध क्यों किया ? चलकर देखें तो सही।

दोनों भाई दक्षिण वन-खंड का दृश्य देख भय से कांप उठे। वहां एक ओर हड्डियों के ढेर लगे थे, दूसरी ओर एक व्यक्ति शूली पर लटक रहा था। उसने अपना परिचय देते हुए कहा—मैं काकन्दी का व्यापारी हूं। जहाज टूट जाने से यहां पहुंचा और एक छोटी-सी भूल के कारण इस स्थिति से गुजर रहा हूं। तुम लोगों की भी यही स्थिति होने वाली है। यहां से बच निकलना चाहते हो तो पूर्व दिशा के वन-खण्ड में शैलक यक्ष रहता है। उसकी आराधना करो।

दोनों भाई अविलम्ब वहां पहुंचे। यक्ष की आराधना की। यक्ष प्रसन्न हुआ। उसने कहा—मैं तुम्हें सुरक्षित स्थान पर पहुंचा सकता हूं किन्तु मार्ग में तुम्हें रयणादेवी वापस बुलाए तो उसकी ओर आंख उठाकर भी मत देखना। दोनों भाई इस बात से सहमत हो गये। यक्ष ने घोड़े का रूप बनाया और उनको अपनी पीठ पर बिठाकर आकाश-मार्ग से दौड़ने लगा।

देवी अपने काम से निवृत्त होकर लौटी। दोनों भाइयों को वहां न देख उसने अपने ज्ञान से देखा। उनके वहां से प्रस्थान की बात ध्यान में आते ही उसने

उनका पीछा किया। निकट पहुंचकर वह उन्हें मोहित करने का प्रयास करने लगी। उसके करुणार्द्र-विलाप और अभ्यर्थना पर जिनरक्षित का मन द्रवित हो उठा। उसने अनुरागपूर्वक देवी की ओर देखा। प्रतिज्ञाच्युत होते ही यक्ष ने उसको नीचे गिरा दिया। देवी ने उसको खड्ग में पिरो लिया और टुकड़े-टुकड़े कर मार दिया। जिनपालित देवी का करुण क्रन्दन सुनकर विचलित नहीं हुआ। यक्ष ने उसको सकुशल चम्पानगरी तक पहुंचा दिया। जिनरक्षित के मन में देवी के प्रति जो अनुकम्पा जगी वह मोह अनुकम्पा है, उसका आत्मविकास से कोई सम्बन्ध नहीं है।

श्रेणिक का सन्देह

महाराजा श्रेणिक अपनी रानी चेलना के साथ भगवान् महावीर की उपासना में गया। वहां से लौटते समय महारानी ने देखा—ठिठुरन भरी सर्दी में मुनि प्रसन्नचन्द्र राजर्षि ध्यानस्थ खड़े हैं। ठंडी हवाएं तीर की भांति उनके चारों ओर बह रही हैं, फिर भी मुनि निष्कंप हैं।

उस दिन सदा की अपेक्षा सर्दी अधिक थी। महारानी मुनि की कठिन साधना का चिंतन करती सो गई। जिस समय वह जगी, उसका एक हाथ रजाई से बाहर था। कमरा बंद था, फिर भी हाथ इतना अकड़ गया था कि उसके मुंह से बोल फूट पड़े—हे भगवान्! वह क्या करता होगा?

राजा ने रानी के ये शब्द सुने और वह उसके चरित्र के प्रति संदिग्ध हो उठा। अपने सन्देह की जांच-पड़ताल किए बिना ही उसने रानी को समाप्त करने का निर्णय ले लिया। प्रातःकाल भगवान् को वंदन करने जाते समय उसने मंत्री अभयकुमार को आज्ञा दी—रानी चेलना का महल जला देना है। अभयकुमार ने विस्मित भाव से इस आदेश को सुना और अपने करणीय के बारे में सोचने लगा।

श्रेणिक भगवान् के समवसरण में पहुंचा। भगवान् को वंदन कर वह बैठा ही था कि उसके कानों ने भगवान् के शब्द सुने—'राजा चेटक की सातों पुत्रियां सतियां हैं।' राजा के काटो तो खून नहीं। अपने द्वारा आदिष्ट अनर्थ की कल्पना से वह कांप उठा, क्योंकि चेलना भी राजा चेटक की पुत्री थी। भगवान् स्वयं जिसके सतीत्व का साक्ष्य देते हैं, उसके प्रति संदेह?

श्रेणिक उलटे पांव लौटा। मार्ग में अभयकुमार मिल गया। श्रेणिक ने आतुरता से पूछा—अभय, कहां से आ रहे हो? अभयकुमार पिता की आतुरता में अर्थ भरी दृष्टि से अवगाहन करता हुआ बोला—आपके आदेश का पालन करके आ रहा हूं। श्रेणिक अनुताप व्यक्त करते हुए बोला—अनर्थ कर दिया। अब क्या होगा? अभयकुमार ने राजा की मानसिक स्थिति को संभालते हुए कहा—पिताजी! चिंता न करें, माताजी सुरक्षित हैं। यह सुनकर श्रेणिक आश्वस्त हुआ। अभयकुमार जैसे पुत्र और मंत्री को पाकर वह गौरव अनुभव कर रहा था।

भगवद्वाणी का प्रभाव

राजगृह नगर में लोहखुरो नामक चोर का बड़ा आतंक था। उसका पुत्र रोहिणेय भी चोरी करने में बहुत दक्ष था। मृत्यु का समय निकट जानकर पिता ने पुत्र को संबोधित करके कहा—बेटा! अन्तिम शिक्षा दे रहा हूं, उसका जीवन भर पालन करना। रोहिणेय पिता का निर्देश जानने के लिए उत्सुक था। पिता ने कहा—पुत्र! राजगृह में महावीर नाम के एक श्रमण हैं, तुम भूल-चूक कर उनके सम्पर्क में मत जाना। वे हमारे शत्रु हैं। उनके पास जाकर हम अपने कुल-कर्म (चोरी) से दूर हो जाते हैं। यदि कभी संयोगवश साक्षात्कार हो जाए तो ध्यान रखना, उनकी वाणी तुम्हारे कान में न पड़े। रोहिणेय ने अपनी ओर से पिता को आश्वस्त किया। लोहखुरो का शरीरांत हो गया।

रोहिणेय के पास गगन-गामिनी पादुकाएं और रूप-परिवर्तिनी विद्या थी। इन उपकरणों के कारण उसका उत्पात और अधिक बढ़ गया। एक दिन वह दिन में चोरी करने के लिए घुसा। लोग सजग हो गए। उनका कोलाहल सुन रोहिणेय दौड़ा पर जल्दी में अपनी पादुकाएं वहीं भूल गया। वह जिस मार्ग से दौड़ा, उसी के पास भगवान् महावीर का समवसरण था। भगवान् उस समय प्रवचन कर रहे थे। रोहिणेय को पता चला। वह अपना मार्ग बदले, इतना अवकाश नहीं था। उसने दोनों कानों में अंगुलियां डालीं और तेज गति से दौड़ा। सहसा उसके पांव में कांटा लगा। अब कांटा न निकाले तो राजपुरुषों की पकड़ का भय और कांटा निकाले तो महावीर की वाणी का भय। राजपुरुषों से बचने के लिए उसने कानों से अंगुलियां हटाकर कांटा निकाला। भगवान् की वाणी कानों में पड़ी। भगवान् उस समय देवता के सम्बन्ध में चर्चा कर रहे थे—"देवता के नयन अनिमिष होते हैं, मन में इच्छा करते ही उनका कार्य निष्पन्न हो जाता है, उनके गले का पुष्पहार म्लान नहीं होता तथा उनके पैर भूमि से चार अंगुल ऊपर रहते हैं।"

कांटा निकलते ही रोहिणेय कानों में अंगुलियां डालकर भाग गया। उसने भगवान् के उक्त वचन अनमने भाव से सुने। अब वह उन्हें विस्मृत करना चाहता था। विस्मृति का जितना प्रयत्न किया उतनी ही धारणा दृढ़ होती गई।

वह भगवान् की वाणी को भुला नहीं सका ।

राजगृह में रोहिणेय का आतंक उत्तरोत्तर बढ़ रहा था। अभयकुमार ने अपने बुद्धि-बल से उसे पकड़वा लिया, पर उसने अपने आपको शालिग्राम का व्यापारी बताकर बचाव कर लिया। अभयकुमार उसके प्रति संदिग्ध था। उसने उसके साथ मैत्री-सम्बन्ध स्थापित किया और अपने घर भोजन का निमंत्रण दिया। भोजन में कुछ मादक पदार्थ खिलाकर उसे मूर्च्छित कर दिया गया। स्वर्गीय वैभव से युक्त एक कक्ष में कुछ सुन्दरियों ने अप्सराओं की भूमिका में उसके सामने प्रश्न किया—आपने पिछले जन्म में क्या कर्म किया, जिससे आपको यह स्वर्गीय ऐश्वर्य उपलब्ध हुआ है ? रोहिणेय स्तब्ध था। वह कुछ कहे उससे पहले ही उसे भगवान् महावीर की वाणी याद आ गई। देवता अनिमिष नयन होते हैं, उनके पैर जमीन पर नहीं टिकते…। रोहिणेय अभयकुमार की कूटनीति को समझ गया। वह स्वयं को मनुष्य-लोक का जीवित मानव बताकर वहां से मुक्त हुआ ।

इस घटना के बाद रोहिणेय का मन बदल गया। उसने सोचा—मैंने बिना इच्छा भगवान् महावीर के कुछ वाक्य सुने, उनसे मुझे जीवन मिल गया। यदि मैं भावपूर्वक भगवान् को सुनकर उनका अनुगमन करूं तो न जाने मेरा कितना हित सध जाए। वह भगवान् के समवसरण में गया। भगवान् का प्रवचन सुन उसे आत्मग्लानि हुई। उसने चौर्य-कर्म से मुक्त होने के साथ अपना समग्र जीवन भगवान् को समर्पित कर दिया।

सहज धार्मिकता

महारानी ने अपने पति को धार्मिक बनाने के लिए साधु-सन्तों से मार्गदर्शन पाया, देवों की मनौतियां कीं, जप किया, संकल्प किया, पर राजा धार्मिक उपासना में दो क्षण का समय लगाने के लिए भी सहमत नहीं हुआ। राजकीय व्यस्तता से निवृत्त होकर वह महलों में पहुंचता। वहां रानी उसके स्वागत में पलकें बिछाए बैठी रहती। परस्पर मधुर सम्बन्धों के बावजूद रानी के मन में एक कड़वाहट भरी रहती। जब-तब अवकाश पाकर रानी कहती—राजन्! आप मेरे लिए एक बार भगवान् का नाम ले लीजिए। पर राजा के मन पर रानी के प्रयत्नों से कोई प्रभाव नहीं हुआ।

दिन-पर-दिन निकलते गए। वर्षों का समय पूरा हो गया। एक दिन रात को अर्ध-निद्रावस्था में राजा के मुंह से निकल पड़ा—'हे भगवान्!' रानी के कानों में ये शब्द पड़े और वह पुलकन से भर गई। राजा के उठने से पहले ही उसने पूरे शहर में उत्सव मनाने की घोषणा करवा दी। राजसभा में पहुंचने पर राजा ने उत्सव की चर्चा सुनी। राजा ने जानना चाहा कि आज यह आकस्मिक उत्सव क्यों मनाया जा रहा है? किसी को पता नहीं था, कोई कहे भी तो क्या? आखिर बात महारानी के आदेश पर टिकी।

महाराज ने महारानी से उत्सव का कारण पूछा। महारानी बोली—आज का दिन बड़ा शुभ दिन है। लम्बी प्रतीक्षा के बाद मेरा स्वप्न फला है। आज रात आपने भगवान् का नाम लिया था। राजा यह बात सुनकर उदास हो गया। उसने दुःखी मन से कहा—आज मेरा एक चिरपोषित संकल्प टूट गया। महारानी बोली—मुश्किल से तो भगवान् का नाम लिया और उस पर यह दुःख, ऐसा कौन-सा संकल्प था आपका?

राजा ने अपने संकल्प को स्पष्टीकरण देते हुए कहा—मैं भगवान् के नाम-स्मरण की अपेक्षा उनके आदेशों पर चलना पसन्द करता हूं। जो व्यक्ति दिन-रात भगवान् का नाम लेते हैं, पर बुराई से मुक्त नहीं होते, उनका क्या भला हो सकता है? तुम मुझे बार-बार भगवान् का नाम लेने की प्रेरणा देती हो, पर क्या

तुमने मेरे जीवन को निकटता से नहीं देखा है ? शासक होने पर भी मैं आक्रोश, अन्याय, संग्रह और शोषण से बचता रहा हूं। मेरे जीवन का एक क्षण भी ऐसा नहीं जाता होगा, जब मुझे भगवान् की स्मृति न हो। हां, ऊपर से नाम न लेने का संकल्प मैंने जान-बूझकर लिया है। इस संकल्प के द्वारा मैं भगवान् को भीतर रखना चाहता हूं और प्रत्यक्ष रूप में काम करता हुआ अपना कर्तव्य निभा रहा हूं।

महारानी अपने पति की सहज धार्मिकता से इतनी प्रभावित हुई कि अब उसने अपने मन की समस्त कड़वाहट धोकर राजा के प्रति अपनी शिकायत को सदा-सदा के लिए समाप्त कर दिया।

कुएं का मेंढक

वल्कलचीरी प्रसन्नचन्द्र रार्जाष का छोटा भाई था। उसका जन्म और लालन-पालन तापसों के आश्रम में हुआ। उसके पिता सोमचन्द्र ने उसके जन्म से कुछ समय पूर्व ही तापस-दीक्षा स्वीकार की थी। जन्म के वाद स्वल्पकाल में ही वह अपनी मां के स्नेह से वंचित हो गया। थोड़े दिन वाद उसकी धात्री मां भी काल-कवलित हो गई। अव आश्रम के ऋषि और ऋषिकुमार उसकी देखभाल करते थे। वल्कल (छाल) का परिधान पहनने से वह वल्कलचीरी नाम से पहचाना जाने लगा।

वल्कलचीरी एक अत्यन्त सहज और सरल वालक था। उसके व्यवहार आवादी में पले हुए बच्चों से भिन्न प्रकार के थे। एक वार वह कहीं जंगल में भटक गया। जंगल में उसे एक रथिक मिला। वह पोतन नामक उसी आश्रम की ओर जा रहा था, जहां वल्कलचीरी अनेक ऋषियों, तापसों और ऋषिकुमारों के साथ रहता था। उसने कुमार वल्कलचीरी को रथ में बिठा लिया।

रथ में रथिक की स्त्री भी वैठी थी। वल्कलचीरी ने उसको 'तात' सम्वोधन से सम्वोधित किया। रथिक की स्त्री ने कहा—यह वच्चा ऐसे कैसे वोल रहा है? रथिक ने उसको समझाया—लगता है यह वच्चा स्त्री-विरहित आश्रम में पला है इसलिए स्त्री-पुरुष में कोई भेद नहीं समझता है। थोड़ी देर वाद कुमारों ने घोड़ों की ओर लक्ष्य कर पूछा—इसमें ये हिरण जुते हुए हैं क्या? (उसने आश्रम में हिरण के अतिरिक्त किसी पशु का नाम ही नहीं सुना था।) जव उसे खाने के लिए मोदक दिये गए तो वह वोला—पोतन आश्रम के कुमार मुझे ऐसे ही फल देते थे। (आश्रम में उसे खाने के लिए केवल फल ही मिलते थे।)

आश्रम के परिवेश में रहने के कारण उसे शहरी सभ्यता तथा अन्य किसी प्रकार का ज्ञान नहीं था। आश्रम में जो कुछ होता वही उसके ज्ञान का विषय था। यही भद्र और सरल स्वभाव वाला वल्कलचीरी आगे जाकर प्रतिवुद्ध हुआ। केवलज्ञान प्राप्त कर उसने अपने पिता सोमचन्द्र और भाई प्रसन्नचन्द्र को धर्मोपदेश दिया तथा भगवान् महावीर के पास पहुंच गया।

बालक की सूझ-बूझ

विक्रमादित्य अपने समय के सुप्रसिद्ध, उदार और न्यायी राजा थे। उन्होंने अपने शासन-काल में कई नयी परम्पराओं का सूत्रपात किया। अपने-अपने वर्ण (जाति) में विवाह करने की परम्परा भी इनके द्वारा स्थापित की गई। इस स्थापना के पीछे एक किंवदन्ती है जो स्वयं विक्रमादित्य के जीवन से जुड़ी हुई है। घटना इस प्रकार है—

लक्षाधीश और कोट्यधीश दो श्रेष्ठियों में घनिष्ठ मित्रता थी। मैत्री उत्तरोत्तर प्रगाढ़ होती गई। अग्रिम पीढ़ियों तक मैत्री को स्थायित्व देने के लिए उन्होंने अपने पुत्र-पुत्री का सम्बन्ध करने का निर्णय ले लिया। निर्णय कागजी कार्यवाही में अंकित कर वे समय की प्रतीक्षा करने लगे।

लक्षाधीश व्यक्ति अपने पुत्र और पत्नी को छोड़ अकालमृत्यु को प्राप्त हो गया। श्रेष्ठी की मृत्यु के बाद व्यवसाय की पूरी संभाल न होने के कारण उनकी आर्थिक स्थिति कमजोर होती गई।

कोट्यधीश सेठ ने सोचा—अब हमारे बच्चों का परस्पर सम्बन्ध हो, ऐसी स्थिति नहीं रही है। पुत्री का विवाह कहीं अन्यत्र करने से झगड़ा बढ़ सकता है। अच्छा हो मैं अपनी बेटी का विवाह महाराजा विक्रमादित्य के साथ कर दूं। राजा के पास संवाद पहुंचा। आगे-पीछे की कोई जानकारी न होने से उन्होंने उस सम्बन्ध को स्वीकार कर लिया। शुभ मुहूर्त देख विवाह का दिन निश्चित कर दिया। राजा की बारात कोट्यधीश सेठ के मकान के निकट पहुंची। श्रेष्ठी-पुत्र ने अपनी माता से कहा—मां! राजा की सवारी आ रही है। देख लो! मां की आंखों में आंसू आ गए। पुत्र ने इसका कारण पूछा तो वह बोली—बेटा! यह तेरी दुर्बलता का परिणाम है। तुम सबल होते तो आज उस सेठ के घर तुम्हारी बारात जाती।

श्रेष्ठी-पुत्र यह बात सुन स्तब्ध रह गया। उसने सारी स्थिति की जानकारी की। सेठ द्वारा लिखित कागजात लेकर दौड़ा और उस हाथी के आगे जाकर खड़ा हो गया, जिस पर राजा सवार था। राजपुरुषों ने उसे वहां से

चाहा किन्तु वह बोला—मुझे इसी समय महाराज से आवश्यक बात करनी है।

विक्रमादित्य को जानकारी मिली तो उन्होंने कहा—इस बच्चे को हाथी पर चढ़ा दो, मैं इसकी बात सुन लूंगा। राजा की आत्मीयता पाकर उसका मनोबल पुष्ट हो गया। वह बोला—राजन् ! हमारे साथ कोई अन्याय होता है तो हम आपसे न्याय की मांग करते हैं। आप स्वयं अन्याय करने वालों का साथ देंगे तो मेरे-जैसे साधारण लोगों को त्राण कहां से मिलेगा ? आप जिस लड़की के साथ शादी करने जा रहे हैं, वह मेरी मांग है। बस, मेरा इतना ही निवेदन है, अब आप जैसा उचित समझें, वैसा करें।

विक्रमादित्य ने इस सूचना में रस लिया। घटना की पूरी जानकारी की, कागजात देखे और तत्काल लड़की के पिता को अपने पास बुलाया। पिता पहले से ही डर रहा था कि कहीं कोई रहस्य खुल न जाए। राजा के साथ उसी लड़के को देख वह सहम गया। राजा ने कागजात सेठ के सामने रखकर पूछा—ये हस्ताक्षर किसके हैं ? सेठ के काटो तो खून नहीं, उसकी आंखें नीची हो गईं। वह कुछ कहने की स्थिति में नहीं रहा।

राजा ने सेठ को सम्बोधित करते हुए कहा—धन ने आपके मन को भी बदल दिया। लगता है आपकी दृष्टि में धन ही प्रतिष्ठा की वस्तु है। अब यह शादी मेरे साथ नहीं, इस लड़के के साथ होगी। आपको धनी पिता के पुत्र को अपना जामाता बनाना है तो मैं इसे पुत्र-रूप में स्वीकार करता हूं।

राजा ने अपनी पोशाक उस श्रेष्ठी-पुत्र को पहना दी। धूमधाम से विवाह-संस्कार सम्पन्न हुआ। सेठ ने अपनी भूल महसूस की। राजा ने प्रजा को न्याय दिया। लड़के ने अपना अधिकार पाया और लड़के की माता अपने पुत्र की सूझ-बूझ से खुश हो गई।

भविष्य में ऐसी अवांछनीय घटना और न घट जाए, इस बात को ध्यान में रखकर राजा ने निर्देश दिया—आदर्श विवाह वह होगा जो अपने-अपने वर्ण में किया जाएगा।

रत्नों का पारखी

दो भाई जवाहरात का काम करते थे। दोनों भाइयों में परस्पर गहरा प्रेम था। कुछ वर्षों बाद बड़े भाई का देहान्त हो गया। उसकी पत्नी अपने इकलौते पुत्र के साथ अलग रहने लगी। दीपावली के अवसर पर मकान की सफाई करते समय लड़के की मां ने एक गठरी देखी। उसे खोला तो चमक-दमक से उसकी आंखें चुंधिया गई। उसने पुत्र को बुलाकर कहा—बेटा, अपने घर में ये रत्न कब से पड़े हैं, मुझे ज्ञात ही नहीं है। जाओ, इन्हें चाचाजी के पास ले जाओ और अच्छी कीमत पर बेचकर रुपया व्याज में दे दो। आय का एक माध्यम खुल जाएगा।

लड़का प्रसन्न मन से वह गठरी लेकर चाचा के पास गया और मां द्वारा कही गई सारी बात बता दी। चाचा बड़े दूरदर्शी थे। उन्होंने कहा—तुम अपने हाथ से ही गठरी खोलो। गठरी खुली, चाचा ने उन रत्नों का अंकन किया और उसको निर्देश दिया—पुत्र ! ये रत्न बड़े कीमती हैं, अभी अपने सामने कोई ग्राहक नहीं है इसलिए इन्हें ले जाकर रख दो। अवसर आने पर इनको बेच देंगे।

बच्चा गठरी लेकर घर आया और अपनी मां को सारी स्थिति बता दी। माता अपने रत्नों को कीमती समझती ही थी। अपने देवर का समर्थन पाकर वह बहुत खुश हुई। अब उसने अपने पुत्र की भोजन, अध्ययन, मनोरंजन आदि की समुचित व्यवस्था खुले दिल से की। लड़का प्रतिभा-सम्पन्न था। थोड़े ही समय में वह स्कूली शिक्षा में निष्णात होकर व्यवसाय में जुड़ गया। बालक की व्यावसायिक प्रतिभा भी असाधारण थी। जवाहरात के काम में वह अच्छा पारखी बन गया।

चाचा ने उपयुक्त समय देखकर अपने भतीजे से रत्नों की वह गठरी मंगाई। लड़के ने अपनी मां से जवाहरात मांगे। मां ने तिजोरी खोली, मंजुषा खोली और बड़े यत्न से रखी हुई गठरी निकालकर पुत्र के हाथ में थमा दी।

लड़के को याद आया, चाचा ने कहा था—रत्न बहुत कीमती हैं, वह उन्हें देखने का लोभ संवरण नहीं कर सका। उसने गठरी खोलकर रत्नों को देखा और पहली बार दृष्टि-क्षेप में ही पूरी परख हो गई। वे रत्न नहीं थे, रंग-

कांच के टुकड़े थे। लड़के ने गठरी फेंक दी। मां बोली—अरे मूर्ख ! यह क्या कर रहा है ? लड़का बोला—मां ! इनकी कीमत पांच कोड़ी भी नहीं, ये तो कांच के टुकड़े हैं।

आचार्यश्री भिक्षु ने इस संदर्भ को अभिव्यक्ति देते हुए कहा—

काच तणो देखी मणकलो, अणसमझू हो जाणै रतन अमोल।
नजर पड़ै जो सर्राफ की, कर देवै हो तिण री कोड्यां मोल॥

मां का मन आहत हुआ। स्त्री-सुलभ संदेह की प्रेरणा से उसने पूछा—बेटा ! उस दिन तुम इस गठरी को चाचा के पास ले गये थे। उन्होंने बदल तो नहीं लिया ? बच्चा मुसकराता हुआ बोला—मां ! चाचाजी बहुत समझदार हैं, वे जानते थे कि उन पर कोई आरोप आ सकता है इसलिए उन्होंने इस गठरी का स्पर्श ही नहीं किया। मैंने अपने हाथ से इसे खोलकर दिखाया था। यह सुनकर मां आश्वस्त हुई।

अब वह लड़का अपने चाचा के पास पहुंचकर पूछता है—चाचाजी ! उस दिन मैं आपके पास जो गठरी लाया था उसमें तो कोरे कांच के टुकड़े हैं। आपने उनको कीमती कैसे बताया ? चाचा गंभीर होकर बोले—बेटा ! मैं जानता था कि वे रत्न नहीं हैं, उनकी कोई कीमत नहीं है। पर उस समय मैं यह बात कह देता तो तुम्हारी मां तुम्हारे खाने-पीने में कटौती करती, अच्छी शिक्षा की व्यवस्था नहीं करती तथा मेरे प्रति संदिग्ध भी हो जाती। अब तुम स्वयं समझदार हो गए हो, सारी स्थितियां अनुकूल हो गईं, तब मैंने उस गठरी का भेद खोलना उचित समझा।

योग्यता का परीक्षण

राजगृह में एक सार्थवाह था। उसके चार पुत्र और चार पुत्रवधुएं थीं। पुत्र-वधुओं के नाम थे—उज्झिता, भोगवती, रक्षिता और रोहिणी। सार्थवाह वृद्ध हुआ। उसने घर की जिम्मेदारी संभालने के लिए वहुओं का परीक्षण करना चाहा।

सार्थवाह ने एक विशाल भोज आमंत्रित किया। भोज के बाद परिजनों के समक्ष चारों वहुओं को पांच-पांच दाने चावल के दिए और कहा—'जब मैं मांगू, वापस लौटा देना।' बड़ी बहू ने चावल के दाने फेंक दिए। दूसरी ने ससुरजी का प्रसाद मानकर खा लिये। तीसरी ने एक डिबिया में उनको सुरक्षित रखा और चौथी ने अपने पीहर वालों के पास भेजकर उन पांच दानों की अलग से खेती करने को कह दिया।

एक-एक कर पांच वर्ष व्यतीत हो गये। सार्थवाह ने पुनः प्रीतिभोज बुलाकर वहुओं से चावल मांगे। बड़ी बहू ने कोष्ठागार से चावल के पांच दाने लाकर दिये। ससुर ने पूछा—'क्या ये वे ही चावल हैं?' वह बोली—'उनको मैंने फेंक दिया था, ये दूसरे हैं।' दूसरी बहू ने कहा—'उन चावलों को मैंने प्रसाद मानकर खा लिया, दूसरे दाने तैयार हैं।' तीसरी ने अपनी डिबिया खोलकर ससुर को मूल के चावल सौंप दिए। अब छोटी वहू की बारी थी। वह बोली—'ससुरजी! आपके दिए हुए पांच चावल पांच वर्षों में बहुत बढ़ गये, उनके लिए कुछ वाहनों की व्यवस्था कीजिए।'

वहू के पीहर से चावल आ गये। सार्थवाह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने अपनी सबसे छोटी वहू रोहिणी को घर की पूरी जिम्मेदारी सौंपी। को तिजोरी की चाबियां सौंपकर सुरक्षा का भार दिया। रसोईघर की व्यवस्था संभलाई और बड़ी बहू उज्झिता काम दिया। योग्यता के अनुसार कार्य का विभाजन देख सार्थवाह की मुक्त कंठ से प्रशंसा की।

संकल्प का फल

सीहोदर उज्जयिनी का सम्राट था और वज्रकरण दशांगपुर (मन्दसौर) का सामन्त राजा। राम, लक्ष्मण और सीता अपने वनवास के चौदह वर्षों में घूमते-घूमते मालव प्रांत पहुंचे। वे मन्दसौर के बाहर विश्राम कर रहे थे। शहर को सूना और उजड़ा हुआ-सा देखकर उन्होंने एक राही से पूछा। वह बोला—'हमारा देश समृद्ध और भरा-पूरा है। इस समय एक उलझन खड़ी हो गई है अतः देश उजड़ रहा है।' अपनी बात को स्पष्ट करते हुए उसने कहा—'मन्दसौर का राजा बड़ा क्रूर और हिंसक था। शिकार उसका शौक था। एक दिन मुनियों का उपदेश सुन वह प्रभावित हो गया। उसने उस दिन से हिंसा छोड़ दी और पूर्वकृत हिंसा के प्रायश्चित्तस्वरूप हिंसक व्यक्ति को नमस्कार करने का त्याग कर दिया। उस समय वह यह नहीं सोच पाया कि मैं साधारण सामन्त हूं, यह संकल्प मुझसे कैसे निभेगा? वज्रकरण राजा सीहोदर का अनुचर राजा था। सीहोदर को जब इस बात का पता चला, वह क्रुद्ध हो गया। उसने आज्ञा दी—चरणों में आकर झुको अन्यथा अधिकार समाप्त। इस आदेश के बाद भी वज्रकरण वहां नहीं पहुंचा। राजा सीहोदर की सेना ने अब मन्दसौर को घेर लिया है। शहर में आतंक छा रहा है। नागरिक सुरक्षा की दृष्टि से बाहर जा रहे हैं और शहर उजड़ रहा है। राम ने सारी बात सुनकर लक्ष्मण से कहा—'लक्ष्मण! जाओ, नरसंहार को टालकर समस्या को समाहित करो।' लक्ष्मण पहले वज्रकरण से मिले, वह अपने संकल्प पर दृढ़ था। सीहोदर के खेमे में पहुंचकर लक्ष्मण ने उसको समझाया, वह अपनी बात पर डटा हुआ था। शांति से समझाने का कोई परिणाम नहीं आया तो लक्ष्मण ने शक्ति का प्रयोग किया। राजा सीहोदर को जब पता लगा कि मुझे समझाने वाले लक्ष्मणजी हैं और ये राम के आदेश से यहां आये हैं तो वह उनकी बात मानने के लिए राजी हो गया। सीहोदर और वज्रकरण दोनों शहर के बाहर श्रीराम के पास पहुंचे और राम के चरण में बैठकर उन्होंने क्षमा-याचना की। पारस्परिक तनाव मिटाया और सदा-सदा के लिए बड़े-छोटे भाई के रूप में रहने की बात पर वे सन्तुष्ट हो गए। उस दिन से उनका स्वामी-सेवक भाव समाप्त हो गया।

बेमेल का मेल

एक व्यापारी मुख्य रूप से तम्वाकू और घी का व्यापार करता था। ग्राहकों के मन में व्यापारी का विश्वास था और व्यापारी ईमानदार था। अच्छा-खासा जमा हुआ काम चलता था।

एक दिन व्यापारी को कहीं वाहर जाना था। पीछे से दुकान कौन संभाले ? यह प्रसंग चला तो पुत्र ने कहा—पिताजी ! आप हमारा भरोसा नहीं करते हैं। कभी काम संभलाकर देखें तो सही।

व्यापारी ने पुत्र को दूकान पर बुलाकर समझाया—देखो वेटे ! एक ओर घी के पीपे रखे हैं तथा दूसरी ओर तम्वाकू के हैं। दोनों वस्तुओं के ये दो पीपे खुले हैं, वाकी सब वन्द हैं। जब तक ये न विकें, दूसरे पीपे मत खोलना। पुत्र द्वारा मूल्य पूछने पर पिता ने कहा—दोनों की कीमत समान है।

व्यापारी पुत्र के भरोसे दूकान छोड़कर गया। पुत्र ने दूकान का निरीक्षण किया। घी और तम्वाकू के खुले पीपों को देखकर उसने सोचा—एक भाव की दो चीजें अलग-अलग पड़ी हैं। ये पुराने आदमी कुछ सोचते-समझते तो हैं नहीं। विना मतलव दो वर्तन रुके पड़े हैं। उसने तम्वाकू वाला पीपा उठाया, घी वाले पीपे में डाला और चम्मच से मिलाकर एकमेक कर दिया।

थोड़ी देर में ग्राहक आया। उसने पूछा—सेठजी कहां हैं ? पुत्र वोला—मैं वैठा हूं, वोलो क्या लेना है ? ग्राहक ने घी की मांग की। उसने तम्वाकू मिला हुआ घी लाकर दिखाया। ग्राहक ने पूछा—यह क्या है ? वह वोला—घी में तम्वाकू मिली हुई है। ग्राहक ने कहा—अरे भाई ! तुम्हारी अक्ल कहां चली गई ? वह वोला—जरा संभलकर वोलो, तुम्हें लेना हो तो लो अन्यथा लौट जाओ।

दूसरे ग्राहक ने तम्वाकू की मांग की। उसे भी वही घी मिश्रित तम्वाकू दिखाई गई। ग्राहक खाली हाथ लौटा। एक-एक कर वीसों ग्राहक आए कुछ खरीदे विना ही लौट गए। दूसरे पीपे खोलने की आज्ञा थी नहीं और घी-तम्वाकू किसी ने खरीदी नहीं। आखिर वह हताश होकर घर आकर वैठ

दूसरे दिन व्यापारी लौट आया। उसने आय-व्यय का हिसाब मांगा तो पुत्र बोला—आय कहां से हो? आपने सब ग्राहकों को सिर चढ़ा रखा है। मेरा तो दिमाग खराब कर दिया आपके ग्राहकों ने। व्यापारी ने पूछा—हुआ क्या? पुत्र ने अपनी करामात की सारी कहानी सुनाई। सारी स्थिति समझकर व्यापारी बोला—अरे बेवकूफ! व्यापार ऐसे होता है क्या? घी और तम्बाकू का भाव एक है, पर तभी तक है जब वे अलग-अलग हों। साथ मिलाकर तुमने उनको धूल बना दिया। जाओ, इसे कूड़ेघर पर डालकर आओ।

व्यापारी ने पुनः अपने ग्राहकों को याद किया, पर उनका मूड बिगड़ चुका था। काफी परिश्रम के बाद ग्राहक निकट आए और दूकान अच्छी प्रकार चलने लगी।

स्त्री-चरित्र

सेठ को व्यवसाय की दृष्टि से देशान्तर जाना था। घर में पत्नी के अतिरिक्त और कोई नहीं था। पति के प्रस्थान की बात सुन वह बोली—आपके बिना एक दिन भी बिताना कठिन हो जाता है। यह एक साल का लम्बा समय कैसे कटेगा? पति ने सहानुभूति दिखाते हुए कहा—समय काटना जितना तुम्हारे लिए कठिन है, उतना ही मेरे लिए है। जरूरी काम है इसलिए जाना पड़ेगा।

पत्नी बोली—आप तो वहां व्यापार में उलझ जाएंगे, मैं यहां बैठी-बैठी करूंगी क्या? यह सुनकर सेठ ने कहा—अपने यहां एक गोदाम कपास से भरा है। तुम दिनभर बैठी-बैठी सूत कातते रहना। काम में मन लग जाएगा तो वर्ष पूरा होता ही दीखेगा।

पति की अनुपस्थिति में पत्नी ने गलत रास्ता ले लिया। वह दुश्चरित्रा हो गई। दिन-रात ऐश और विलास! कौन पति को याद करे? और कौन कपास काते? समय अपनी गति से बह रहा था। सेठानी की आंखें तब खुलीं जब उसे संवाद मिला कि सेठजी अपनी एक-वर्षीय यात्रा पूरी कर अब घर पहुंच रहे हैं। सेठ के आगमन का संवाद सेठानी के लिए महाभारत बन गया और सारी व्यवस्था उसने ठीक कर ली, पर काते बिना कपास का सूत तो बन नहीं सकता था। आखिर उसने एक षड्यंत्र रचा और अपने पति को फंसाने के लिए निकल पड़ी।

चण्डीदेवी का भयावह रूप, सिर पर धग-धगते अंगारों से भरी हंडिया और हाथ में नंगी तलवार। सेठानी अपने पति के रास्ते में आकर खड़ी हो गई। ज्यों ही वह उधर से गुजरा, वह कड़ककर बोली—अरे यायावर! कौन है तू बिना मेरी आज्ञा इस कान्तार से गुजरने वाला?

सेठ कांप उठा। कुछ पूछने का साहस उसे नहीं हुआ। हाथ जोड़े, पांवों में सिर रखा, गिड़गिड़ाया, पर देवी का कोप शान्त नहीं हुआ। उसके हाथ में नंगी तलवार देख सेठ का सिर चकराने लगा। भय के कारण उसके मुंह से शब्द नहीं निकल रहे थे। फिर भी वह बचा-खुचा साहस जुटाकर बोला—मां! भूल हो

गई, क्षमा करो, चाहो तो कोई प्रायश्चित्त दे दो।

सेठानी इसी अवसर की प्रतीक्षा में थी। वह कुछ रोब प्रदर्शित करती हुई बोली—

मैं हूं देवी चण्डिका, माथै मोटी हुंडिका।
थारो या पत्नी री नाश, (या) कात्यो-पीन्यो करूं कपास।

देवी ने प्रायश्चित्त के तीन विकल्प सुझाए—

१. इस तलवार से तुम्हारी गरदन उतार दूं।

२. तुम्हारी पत्नी को बलि का बकरा बना दूं।

३. तुम्हारी पत्नी द्वारा काते गये सूत को कपास बना दूं।

भद्र श्रेष्ठी अपनी पत्नी की वंचना को नहीं समझ सका। उसने अनुनयपूर्ण शब्दों में कहा—देवी! तीसरा विकल्प मुझे स्वीकार है। देवी बोली—तथास्तु! ऐसा ही होगा। पर देखो, दो घंटा तक यहां से हिलना मत।

वहां से लौटकर सेठानी घर पहुंची और अपने चण्डी के मुखौटे को उतार फेंका। दो घंटे बाद वहां से चलकर सेठ घर पहुंचा। भय के कारण उसे ज्वर हो गया था। मध्याह्न की धूप और भूख का प्रभाव था। दयनीय दशा में उसने घर में प्रवेश किया। सेठानी प्रतीक्षा में बैठी थी। सेठ की हालत देखते ही वह आंसू बहाती हुई बोली—आपको शरीर का कोई ध्यान है या नहीं? यह क्या हाल बना रखा है?

सेठ बोला—आज तो तुम्हारे सौभाग्य से ही बचकर आया हूं, मार्ग में देवी कुपित हो गई, वह मेरे या तुम्हारे प्राण लेकर ही संतुष्ट होने वाली थी, किन्तु एक बात पर राजी हो गई कि तुमने सालभर जो सूत काता है उसे कपास में बदलकर जीवन-दान दे सकती हूं।

सेठानी अन्यमनस्क होकर बोली—तो क्या मेरा साल भर का परिश्रम व्यर्थ जाएगा? सेठ ने उसे आश्वस्त करते हुए कहा—प्राण बचें तो लाखों पाए। चलो, देखें तुम्हारे सूत का क्या हाल है? पति-पत्नी दोनों गोदाम में गए, वहां कपास का ढेर वैसे ही लगा था, जैसे सेठ छोड़कर गया था। पत्नी ने व्यंग्य भरी मुसकान बिखेरते हुए कहा—आपकी देवी ने मेरा कात्या-पीन्या कपास कर दिया।

सत्सम्पर्क का प्रभाव

एक सेठ को व्यवसाय की दृष्टि से सुदूर प्रदेश में जाना था। उस समय यातायात के वैज्ञानिक साधन उपलब्ध नहीं थे, इसलिए यात्रा में काफी समय लग जाता था। सेठानी सेठ के जाने का निर्णय सुन उदास हो गई। सेठ ने उसको जल्दी आने का आश्वासन देकर उससे स्वीकृति ले ली। सेठानी अकेली रहना नहीं चाहती थी, पर विवश थी। आखिर उसने अपने पति को विदा दी। विदा के समय सेठ ने अपनी पत्नी को शिक्षा देते हुए कहा—मैं वहां का काम निपटाकर जल्दी आने का प्रयास करूंगा। फिर भी कुछ समय लग सकता है। तुम अपने कुलाचार का ध्यान रखना। किसी भी स्थिति में कुल-मर्यादा का अतिक्रमण मत करना। कदाचित् तुम्हारा मन असन्तुष्ट हो जाए तो किसी व्यक्ति को याद कर लेना। पर ध्यान रखना वह व्यक्ति ऐसा हो जो शौच के लिए सबसे दूर जाता हो।

सेठानी को सेठ का यह कथन अप्रिय लगा। वह बोली—आप मेरा अविश्वास क्यों करते हैं ? मेरा मन स्थिर है। मैं अपने जीवन में कभी ऐसा प्रसंग आने ही नहीं दूंगी।

सेठ बोला—मेरे मन में तुम्हारे प्रति किंचित् भी अविश्वास नहीं है, पर पता नहीं कब क्या घटित हो जाए ? इसलिए थोड़ा-सा संकेत मात्र किया है, और तो तुम स्वयं समझदार हो।

सेठ अपने व्यावसायिक प्रदेश में पहुंचा और लम्बे समय तक नहीं लौट सका। सेठानी सेठ की प्रतीक्षा में पलकें बिछाए बैठी थी, पर सेठ के आगमन की कोई सूचना नहीं मिली। आखिर एक समय आया जब सेठानी का मन विचलित हो गया। उस समय उसे अपने पति की शिक्षा याद आई। अब वह अपने मकान की छत पर चढ़कर शौच जाने वाले व्यक्तियों का निरीक्षण करने लगी। उसने देखा—एक व्यक्ति दूर, बहुत दूर जा रहा है। दो-चार दिन उसके बारे में पक्की जानकारी कर सेठानी ने उसे आमन्त्रित करने का निर्णय ले लिया। वह सेठानी के मकान के आगे से ही गुजरता था। एक दिन उसने अपने साथ उसे ऊपर बुलाया। उस व्यक्ति ने सोचा—कोई काम होगा। वह

कमरे में पहुंचा। उसके पहुंचते ही प्रारंभिक शिष्टाचार की वातों के वाद सेठानी ने अपनी मन:स्थिति के अनुरूप व्यवहार का प्रदर्शन किया। आगन्तुक एक वार चौंका और फिर कांप उठा। वह सेठानी के हाव-भाव को समझ गया था। अपने वचाव के लिए उसने एक उपाय सोचा। उस उपाय की क्रियान्विति के लिए उसने अपने हाथ में थामे हुए उस मिट्टी के वर्तन (करवा) को गिरा दिया, जिसे वह जंगल जाते समय पानी से भर ले जाता था।

मिट्टी का वर्तन गिरा और चूर-चूर हो गया। आगन्तुक उसे देख सिसकियां भरकर रोने लगा। सेठानी आश्चर्य में खो गई। मिट्टी का वर्तन टूटने पर इतना दु:ख ? उसने दु:ख का कारण पूछा। आगन्तुक आंसू पोंछते हुए वोला—हे प्रभो ! अव क्या होगा ? मेरे जीवन भर की अर्जित इज्जत समाप्त हो जाएगी। सेठानी की समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था। वह वोली—आप चिन्ता क्यों करते हैं ? जैसा चाहो वैसा 'करवा' अपने यहां से ले लीजिये। आप यह तो वताएं कि आपके मन में दु:ख क्या है ?

आगन्तुक सकुचाता और सहमता हुआ वोला—यह करवा मेरे जीवन का साथी है। मैंने आज तक अपनी पत्नी और करवे के अतिरिक्त किसी के सामने अपनी काछ को अनावृत नहीं किया। अव मुझे दूसरा मिट्टी का वर्तन लेना पड़ेगा। वस यही सोचकर मैं व्यथित हो रहा हूं।

सेठानी ने आगन्तुक की यह वात सुन अपने आपको संभाल लिया। वह सोचने लगी—कहां यह सदाचारी व्यक्ति और कहां कुल-परम्परा को तोड़ने के लिए उद्यत मेरा मन ? मैंने अपने कुत्सित विचारों से अपने जीवन में धव्वा लगा लिया। खैर, अब भी संभल जाऊं तो अच्छा है।

सेठानी का मन वदला और उसने आगन्तुक को पिता-तुल्य सम्मान देकर विदा किया। कुलीन व्यक्ति के सम्पर्क से असन्तुलित मन भी सन्तुलित हो जाता है। इसलिए अकुलीन व्यक्ति के संसर्ग से वचाव करना चाहिए।

अन्नाणी किं काही ?

मद्रास महानगर में कोई राजस्थान का ग्रामीण व्यक्ति पहुंच गया। उसने शहर में एक बहुत भव्य प्रासाद देखा। वह वहीं खड़ा रहा। एक व्यक्ति उधर से गुजरा। उसने पूछा—यह मकान किसका है? आगन्तुक बोला—तेरियाद। ग्रामीण आदमी ने सोचा—यह तेरियाद साहब की कोठी है। वह आगे बढ़ा। वहां एक बहुत बड़ा क्षत्रम् (धर्मशाला) था। उसकी जिज्ञासा बढ़ी और उसने किसी राहगीर से पूछ लिया—यह किसने बनवाया? राहगीर ने उत्तर दिया—तेरियाद। उसकी धारणा में उस भव्य प्रासाद और इस क्षत्र के मालिक का एक ही चित्र उभरा। शहर की युनिवर्सिटी के निकट से गुजरते समय वह ठगा-सा रह गया। उसने सोचा—यह इतना बड़ा मकान किसका हो सकता है? उसके ऐसा सोचते ही एक महिला उधर से गुजरी। वह पूछने का लोभ संवरण नहीं कर सका। महिला ने कहा—तेरियाद! ग्रामीण मन-ही-मन मुग्ध और विस्मित हो गया। उसकी कल्पना में तेरियाद महोदय बहुत सम्पन्न व्यक्ति थे, जिन्होंने मद्रास जैसे बड़े शहर में इतने बड़े मकान बनवा लिये।

मन में उमड़ते हुए उत्सुकता के ज्वार को किसी तरह थामे हुए वह एक बहुत बड़े हास्पिटल के आगे जाकर खड़ा हुआ। उसके बारे में भी उसे उपर्युक्त शब्द सुनने को मिला। अब तो वह तेरियाद महोदय से मिलने के लिए उतावला हो उठा। वहां से कुछ आगे बढ़ने पर रेलवे स्टेशन पहुंच गया। वहां उसने ट्रेन से उतरते हुए एक व्यक्ति को देखा। जिसके गले में फूलमालाएं लदी हुई थीं। लोग उसे घेरे खड़े थे और उसी की जय बोल रहे थे। ग्रामीण ने उनका परिचय पूछा तो किसी यात्री ने कह दिया—तेरियाद। ये शब्द सुनते ही उसकी खुशी का पार न रहा। उसकी तेरियाद महोदय को देखने की बूंद-बूंद इच्छा घनीभूत होती हुई पूरा हिमालय बन गई थी। किसी प्रबल इच्छा की पूर्ति होने पर आदमी जैसा सुख मिलता है, वही सुख उस ग्रामीण को मिला।

अपने मन में विविध प्रकार की कल्पनाएं संजोता और शहर दुनिया को मुग्धभाव से देखता-देखता वह बाजार में पहुंचा। वहां किसी

शवयात्रा निकल रही थी। शिक्षित न होने पर भी उसके मन में उठने वाली जिज्ञासाओं का पार नहीं था। उसने वहां खड़े किसी नवयुवक से धीरे से पूछा—भाई! ये कौन हैं? युवक लापरवाही के साथ बोला—तेरियाद! इतना सुनना था कि वह ग्रामीण फूट-फूट कर रोने लगा। उसका रोना देखकर लोग इकट्ठे हो गए। उन्होंने रोने का कारण पूछा तो वह बोला—तेरियाद साहब कितने बड़े आदमी थे। आज वे इस धरती पर नहीं रहे। अब इनके मकानों को कौन संभालेगा? ग्रामीण की इन बेतुकी बातों को कोई भी नहीं समझ सका। उसी समय वहां कोई राजस्थानी पहुंच गया। उसने उससे दो-चार प्रश्न पूछकर वहां एकत्रित लोगों को समझाते हुए कहा—यह राजस्थान के गांव से पहली बार मद्रास आया है। यहां की भाषा से अपरिचित है। कुछ भी देखता है, उसके बारे में पूछता है। लोग इसकी बोली समझते नहीं, इसलिए सीधा-सा जवाब दे देते हैं—तेरियाद, नहीं जानते। यह समझ गया कि तेरियाद किसी आदमी का नाम है। हर घटना को यह उसी के साथ जोड़ता गया और जब शव-यात्रा के सम्बन्ध में पूछने पर भी उसे तेरियाद ही सुनने को मिला तो यह अधीर हो गया।

ग्रामीण के अज्ञान पर लोगों को तरस तो आया ही, पर इस अजीबोगरीब बात पर वे सब इतने हंसे कि हंसते-हंसते लोटपोट हो गए। भगवान् महावीर ने सच ही तो कहा है—'अन्नाणी किं काही, किं वा नाहीइ छेय पावगं।' अज्ञानी व्यक्ति क्या करेगा? और कैसे जानेगा कि उसके लिए श्रेयस्कर क्या है तथा अश्रेयस्कर क्या है?

